वीर हरिसिंह नलवा

Scanned with CamScanner

वीर हरिसिंह नलवा

पंजाब की भूमि आरम्भ से ही वीर पुरुषों की भूमि रही है। एक हज़ार साल तक निरन्तर उत्तर से आने वाले प्रत्येक आक्रमणकारी का पंजाब ने मुँहतोड़ उत्तर दिया है।

भारतीय इतिहास का एक ऐसा ही विजय प्रतीक है सेनापति हरिसिंह नलवा। वह ऐसा प्रतापी पुरुष था कि जिसके नाम के डंके आज भी अफगानिस्तान में बजते हैं।

किशोर माला के अन्य पुष्प

महर्षि दयानन्द
जगत् की रचना
द्वितीय विश्व युद्ध
(हिटलर की कहानी)
बोध कथाएँ
सदाचार की कथाएँ
स्वामी विवेकानन्द
श्रीकृष्ण

इस माला के अन्तर्गत किशोरों के लिए न केवल रोचक और आकर्षक पुस्तकें प्रकाशित करना प्रत्युत प्रेरणाप्रद एवं उपयोगी साहित्य प्रस्तुत करना यही हमारा उद्देश्य है।

हिन्दी साहित्य सदन
नई दिल्ली–110 026

वीर हरिसिंह नलवा

लेखक

अशोक कौशिक

हिन्दी साहित्य सदन

नई दिल्ली–110005

जाको राखे साइंयाँ

भारतवासियों ने अपने देश की भूमि को माता के रूप में माना है। स्वयं को भारत माता की सन्तान कहकर वे गौरव का अनुभव करते आ रहे हैं। आदि काल से आरम्भ कर अंग्रेज़ों के भारत छोड़ने तक अटक से कटक और कश्मीर से कन्याकुमारी तक इस देश का विस्तार था। आदिकाल में तो अटक से परे भी भारत ही था, क्योंकि हमारा शान्तिमय विस्तारवाद असीम था और सारा संसार उसका क्षेत्र रहा है। हमारी नीति का आधार सत्य, न्याय और संस्कृति रहा है।

शान्ति और धैर्य के साथ भारतवासी विश्व का उत्थान और पतन निहारते रहे हैं। अपने शान्तिमय पथ की रक्षा और अपनी मर्यादा के निर्वाह के लिए भारतवासी समय-समय पर आहुतियाँ भी देते रहे हैं। भारत इस सत्य को स्वीकार करता रहा है कि देश के लिए किया गया कोई भी बलिदान सर्वोत्तम बलिदान होता है। बलिदानी भारत का इतिहास साक्षी है कि अपने देश की शान्ति की सुरक्षा के लिए हमारी वीरता की परम्परा जीवित रही है। सत्य एवं शान्ति के पथ पर भारत अपने शौर्य तथा बलिदान का इतिहास लिखता रहा है। भारत सत्य का देश और संकल्प की भूमि है।

हरिसिंह नलवा का जीवन भी शौर्य और वीरता से ओत-प्रोत है। वीरता का प्रदर्शन और अवसर आने पर प्राण भी न्यौछावर करने की भावना भारत की उसी वीर परम्परा के अनुसार है जो हमारे बलिदानियों, क्रान्तिकारियों, राष्ट्रीय नेताओं तथा देशवासियों ने भारत

माता की प्रतिष्ठा और सम्मान के लिए आदिकाल में ही स्थापित कर दी थी। हमें अपनी उस परम्परा पर गर्व है। वीरता की प्राचीन पृष्ठभूमि से वर्तमान तक की शृंखला में अगणित अनमोल कड़ियाँ पिरोई हुई हैं।

भारतीय इतिहास का एक ऐसा ही विजय-प्रतीक है सेनापति हरिसिंह नलवा। यह हरिसिंह नलवा की असीम शक्ति और अदम्य साहस का ही परिणाम था कि भारत पर हो रहे अफगानी आक्रमण की धारा पीछे की ओर मुड़ गई। वह ऐसा प्रतापी पुरुष था कि जिसके नाम से आज भी अफगानी माताएँ अपने नन्हे बालकों को डराया करती हैं। यह हरिसिंह नलवा का ही पराक्रम था कि महाराजा रणजीतसिंह के छोटे-से राज्य को इतना बड़ा विस्तार मिल पाया था। जिन अफगानों को अंग्रेज सरकार सीधा न कर सकी थी और अपने बहुत-से जन-धन की हानि उठाकर जिसको काबुल से भागना पड़ा था।

महाराजा रणजीतसिंह की सेना ने, जिसका नेतृत्व नलवा ने किया, उनके सभी छल-बल निकाल डाले थे। तभी तो किसी इतिहासकार ने नौशहरा के भीषण युद्ध का वर्णन करते हुए लिखा है—"युद्ध करने में तो पठान और हिन्दू एक समान हैं। किन्तु दोनों में अन्तर यह है कि हिन्दू हारते हुए भी मैदान को नहीं छोड़ते जबकि पठान हार होती देख मैदान छोड़कर भाग जाया करते हैं।"

कहते हैं कि जब डेरा इस्माइल खाँ और गाजी खाँ के पठान सरदारों ने हिन्दू आक्रमणों को रोकने के लिए एक बूढ़े नवाब को पत्र लिखा कि "हमने मुकाबले का इरादा किया है, तुम हमारे साथ मिल जाओ, खुदा पर भरोसा है, वह भी हमारी मदद करेगा।" तो इसके उत्तर में उस बूढ़े नवाब ने लिखा था—'मुकाबले की तैयारी जरूर करो पर खुदा का भरोसा छोड़ दो। क्योंकि खुदा अब हिन्दू हो चुका है।'

हरिसिंह नलवा

जिस साहसी वीर नलवा की कहानी हम अगले पृष्ठों पर दे रहे हैं उसके विषय में एक बड़ी मनोरंजक कहानी भी प्रचलित है। जो लोग चर्चा के विषय बनते हैं उनके विषय में अनेक कहानियाँ भी बन जाया करती हैं, उनमें से कुछ तो सत्य होती हैं और कुछ मनगढ़न्त होती हैं। जो घटना हम लिख रहे हैं वह कितनी सत्य अथवा कितनी मनगढ़न्त है, इसके विषय में निर्णय कर पाना कठिन है।

नलवा की वीरता की जब सब स्थानों पर चर्चा होने लगी तो कुछ लोगों ने कहना आरम्भ किया क़ि प्रारम्भ में नलवा इतना साहसी और निडर नहीं था। किन्तु एक घटना ने उसे निडर बना दिया और उसके बाद उसकी जीवन-मीमांसा ही बदल गई।

हुआ यों कि एक बार युद्धक्षेत्र में हरिसिंह के समीप ही एक गोली आकर गिरी। गोली एक पत्थर को लगी और पत्थर चकनाचूर हो गया। किन्तु आश्चर्य की बात कि उसके नीचे एक चुहिया थी, जो पत्थर के टुकड़े बिखरने पर भी न केवल जीवित रही अपितु किसी प्रकार भी आहत हुए बिना वहाँ से उछली और भागकर किसी अन्य स्थान पर जाकर छिपने का यत्न करने लगी।

यह देख हरिसिंह नलवा को विश्वास हो गया कि जब तक किसी की मृत्यु समीप न आ जाए गोलियों की बौछार में भी उसका कोई बाल-बाँका नहीं कर सकता। उसको इस दोहे का स्मरण हो आया—

जाकौ राखै साइयाँ मार सके नहिं कोय।
बाल न बाँका कर सकै, जो जग वैरी होय॥

जो कुछ इस दोहे में कहा गया है वह अक्षरश: सत्य है, इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं। क्योंकि इस प्रकार की घटनाएँ समय-समय पर घटित होती रही हैं और प्राणी बाल-बाल बचता रहा है।

जन्म एवं बाल्यकाल

पश्चिम पंजाब का जो भाग अब पाकिस्तान में है उसमें एक स्थान का नाम है गुजरांवाला। हमारे नायक हरिसिंह नलवा का यही जन्म स्थान है। उनके पिता का नाम सरदार गुरुदयाल सिंह उप्पल था। 'सुक्र चकियां मिसल' नाम से सिक्खों की एक प्रसिद्ध मिसल अर्थात् सेना थी। सरदार गुरुदयालसिंह उप्पल उसके नायक थे। उन्हीं के यहाँ माता धर्मकौर की कोख से हमारे नायक नलवा ने सन् 1791 में जन्म लिया था।

बालक का नाम हरिसिंह रखा गया। कहावत है, 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात।' उसके अनुसार हमारे इस होनहार बिरवा के चीकने पात के लक्षण भी बचपन में ही दिखाई देने लगे थे। बालक जब कुछ समझने योग्य हुआ तो उसके पिता ने एक सिक्ख विद्वान और एक मौलवी को उसकी शिक्षा के लिए नियुक्त कर दिया। सिख अध्यापक उसको पंजाबी पढ़ाता था तथा मौलवी फारसी। उन दिनों पढ़ाई की लगभग यही विधि प्रचलित थी।

बालक हरिसिंह होनहार अवश्य था। किन्तु न जाने क्यों विधाता उससे रूठ गया था कि असमय में ही उसके सिर पर से उसके पिता का प्यार भरा हाथ उठ गया। जिस समय हरिसिंह के पिता का देहान्त हुआ उस समय उसकी आयु केवल 7 वर्ष की थी। क्या जानता है 7 वर्ष का बालक? पिता तो केवल उसके जन्मदाता ही रहे, पालन-पोषण और

शिक्षा-दीक्षा में कुछ भी नहीं कर पाये। हरिसिंह की माता अपने एकमात्र पुत्र को लेकर अपने भाई के घर चली गई। आगे की बाल्यावस्था उन्होंने अपने मामा के घर पर बिताई।

हमने आरम्भ में ही लिखा है कि बालक बड़ा होनहार था। उसकी बुद्धि बड़ी विलक्षण थी और उसकी धारणा शक्ति भी अद्भुत थी। जिस किसी वस्तु को वह एक बार देख या सुन लेता था फिर सहज ही वह उसको भूलता नहीं था। अपने मामा के घर पर रहते हुए चौदह-पन्द्रह वर्ष की आयु में ही किशोर हरिसिंह ने युद्ध-विद्या में अच्छी निपुणता प्राप्त कर ली थी। धनुष-बाण चलाना, खड्ग चलाना, भाला फेंकना तथा घुड़सवारी में वह भलीभाँति पारंगत हो गया था।

सरदार हरिसिंह का डील-डौल काफी ऊँचा था। उनका शरीर गठा हुआ था। कहते हैं कि उनके शरीर में बिजली की सी चुस्ती और फुर्ती थी। उनके नेत्रों में एक विशेष प्रकार का सम्मोहन था। बड़े-बड़े योद्धा भी उनसे आँख नहीं मिला पाते थे। कथा प्रसिद्ध है कि सन् 1823 में अफगानिस्तान का वीर योद्धा मोहम्मद आजिम खाँ बरकजाई युद्ध क्षेत्र में जब सरदार हरिसिंह के सामने प्रत्यक्ष लड़ने के लिए आया तो उनसे आँखें मिलते ही वह युद्धभूमि से भाग गया।

विधाता ने उन्हें ऐसा मनोहर रूप, सुडौल शरीर, बलिष्ठ भुजाएँ और अद्भुत शक्ति प्रदान की थी कि देखते ही दर्शक उन पर मुग्ध हो जाता था। वे केशधारी नहीं थे, किन्तु उन्होंने दाढ़ी रखी हुई थी, सिर पर पगड़ी भी बाँधते थे जिसका कि उन दिनों प्रचलन था।

महाराजा रणजीतसिंह के दरबार में

उन दिनों पंजाब पर महाराजा रणजीतसिंह का राज्य था। उन्हें सब भारतवासी पंजाब केसरी नाम से सम्बोधित करते थे। लाहौर उनकी राजधानी थी। प्रत्येक वसन्त पंचमी के अवसर पर वे अपनी

राजधानी में एक बहुत बड़े दरबार का आयोजन किया करते थे। यह दरबार वसन्त पंचमी से आरम्भ होकर निरन्तर दस दिन तक चलता रहता था।

इस अवसर पर अनेक प्रकार के प्रदर्शन और मनोरंजन आदि के कार्यक्रम भी हुआ करते थे। अपने-अपने करतब में कुशलता दिखानेवाले युवक को महाराजा स्वयं पारितोषिक दिया करते थे। इसी अवसर पर अपनी सेना के लिए भी महाराज बलिष्ठ युवकों का चयन कर लिया करते थे और उनको उचित प्रशिक्षण प्रदान कर उपयुक्त पदों पर प्रतिष्ठित कर दिया करते थे।

सन् 1804 का वसन्त हरिसिंह के जीवन में एक नया मोड़ लेकर आया। उस समय हरिसिंह की आयु केवल 14 वर्ष की थी। किन्तु डीलडौल में हमारा यह होनहार किशोर, युवक जैसा ही लगता था। इस उत्सव में हरिसिंह भी सम्मिलित हुआ। वहाँ वह मात्र मूकदर्शक ही नहीं रहा अपितु उसने अपने करतबों का प्रदर्शन भी किया। उसके सैनिक-करतब देखकर सभी आश्चर्यचकित रह गये। महाराज को भी इसकी भनक मिली। वे तो ऐसे युवकों की खोज में ही रहते थे। उन्होंने भी इस अद्भुत युवक को देखा। उसके मुखमण्डल से ऐसा तेज टपक रहा था कि महाराज प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके। उन्होंने न केवल हरिसिंह को अपनी सेना में रखा अपितु उसको उन्होंने अपने विशिष्ट अंगरक्षक के पद पर नियुक्त कर दिया।

सरदार हरिसिंह का भाग्य इस उत्सव से पलट गया। उनको वह दिशा मिल गई जिसके लिए इस वीर प्रसविनी धरती पर अपनी वीरमाता की कोख से उन्होंने जन्म लिया था। महाराज के अंगरक्षक के नाते अब वह सदा उनके साथ ही रहने लगेगा थे।

सरदार हरिसिंह को राजदरबार में प्रविष्ट हुए अभी कुछ ही

मास बीते थे कि एक दिन महाराज ने शिकार खेलने के लिए वन जाने की इच्छा व्यक्त की। स्वाभाविक था कि उनका अंगरक्षक उनके साथ ही जाता। सरदार हरिसिंह इससे बहुत प्रसन्न हुए। अपने दलबल के साथ महाराजा रणजीतसिंह ने वन में प्रवेश किया।

विचित्र संयोग है कि उनके वन में प्रविष्ट होते ही सामने से एक बाघ आ गया और वह इस तीव्र गति से हरिसिंह की ओर झपटा कि किसी को कुछ सोचने-समझने अथवा करने का अवसर ही नहीं रहा। बाघ सहसा ही आक्रमण कर बैठा था और पूरे यत्न से उसने हरिसिंह को दबोचने का यत्न भी किया। हरिसिंह को म्यान से अपनी तलवार निकालने का भी अवसर नहीं मिल पाया।

हरिसिंह इस प्रकार के आक्रमण से तनिक भी विचलित नहीं हुआ। न उसे किसी प्रकार का भय ही लगा। दृढ़ निश्चयी उस वीर ने हाथों से ही उस बाघ के आक्रमण का सामना किया। संयोग से बाघ का जबड़ा उसके हाथों में आ गया। और उसको पकड़कर उसने बाघ को इस प्रकार उछालकर घुमाया कि बाघ का तो श्वास ही बन्द हो गया। हरिसिंह ने यथासामर्थ्य उसको चक्कर खिलाए और फिर जोर से भूमि पर पटक दिया। कदाचित् बाघ तुरन्त सँभल भी जाता किन्तु सरदार हरिसिंह ने उसको इसका अवसर ही नहीं दिया। जिस प्रकार सहसा बाघ उस पर झपटा था उसी प्रकार उसने सहसा बड़ी फुर्ती से म्यान से तलवार निकालकर बाघ की गर्दन पर इतना प्रबल प्रहार किया कि उसका सिर धड़ से पृथक् हो दूर जा गिरा।

महाराजा रणजीतसिंह तथा उनके अन्य सभी साथी उनसे कुछ ही दूर पर अवाक् से खड़े यह सब होता देख रहे थे। वे घोड़ा दौड़ाकर जब तक हरिसिंह की सहायता के लिए पहुँचे कि तब तक सबकुछ समाप्त हो चुका था। उन्होंने पहुँचकर हरिसिंह को सान्त्वना देते हुए कहा, "घबराओ नहीं, हम पहुँच गए हैं।" तब हरिसिंह ने शान्त भाव

से उत्तर दिया, ''महाराज! आप कष्ट न कीजिये। आपकी कृपा से बाघ परलोक पहुँच गया है।'' तब महाराज की दृष्टि गर्दन कट जाने से निर्जीव पड़े बाघ पर पड़ी। वे देखकर आश्चर्यचकित रह गये।

महाभारत काल में एक प्रसिद्ध राजा हुए हैं। उनका नाम था राजा नल। जिस प्रकार आजकल योरोपीय तथा अन्य पाश्चात्य देशों में 'बुल-फाइट' होती है अर्थात् साँड से मनुष्य का युद्ध होता है, उसी प्रकार उस युग में राजा नल शेर से युद्ध किया करते थे। साँड से युद्ध में यद्यपि मानव योद्धा अपने हाथ में किसी प्रकार का शस्त्र नहीं लेता किन्तु वह एक लाल चादर अवश्य लेता है, जिसके आधार पर वह साँड को डराता रहता है, इस प्रकार वह उस युद्ध में विजयी होने का यत्न करता है। कभी कोई योद्धा घायल भी हो जाता है और कभी बच भी जाता है।

राजा नल सिंह से कुश्ती किया करते थे। सिंह एक तो वैसे भी रक्त पिपासु पशु होता है जबकि साँड रक्त पिपासु नहीं होता। सिंह के नाखून बड़े नुकीले होते हैं। सबसे बड़ी बात यह है कि वह साँड की भाँति भारी शरीर का नहीं होता अपितु बड़ा फुर्तीला होता है और मानव पर आक्रमण करना उसका स्वाभाविक गुण है। राजा नल ऐसे हिंसक पशु से युद्ध करते थे और उसमें सदा विजयी होते थे। वे शेर के जबड़े पकड़कर उसको घुमा दिया करते थे और उस दिन ठीक उसी प्रकार हमारे नायक हरिसिंह ने भी बाघ के जबड़े पकड़कर उसको घुमा दिया था।

महाभारत की यह कथा बहुत प्रचलित है। हम पहले ही लिख आये हैं कि रामायण और महाभारत भारतीयों के लिए प्रेरणा-स्रोत हैं। महाराज को तुरन्त उस समय नल की वीरता का स्मरण हो आया और उन्होंने कह दिया, ''तूँ ताँ नलवाँग बहादुर हैं (तुम तो राजा नल के समान वीर हो)।

उपस्थित सैनिकों और कर्मचारियों ने इसका समर्थन किया और तब से हरिसिंह को 'नलवाँग' कहा जाने लगा। क्योंकि सरदार हरिसिंह सबसे छोटे होने के कारण सबके प्रिय थे इसलिए वह शब्द बिगड़कर 'नलवा' बन गया और फिर उनका यही नाम प्रचलित हो गया।

युद्ध क्षेत्र में

सन् 1807 के आरम्भ की बात है। उन दिनों कसूर पर नवाब कुतबदीन खाँ का शासन था। महाराज रणजीतसिंह को पता चला कि कुतबदीन उन दिनों बड़ी सैनिक तैयारी कर रहा है। कुतबदीन खाँ ने मुलतान के शासक नवाब मुजफ्फर खाँ को भी अपने साथ मिला लिया था। दोनों नवाब मिलकर सिक्ख साम्राज्य को समाप्त करने की योजना बना रहे हैं, यह समाचार भी महाराजा रणजीतसिंह को मिला। इतना ही नहीं, दोनों नवाब इसको धर्मयुद्ध का रूप देना चाह रहे थे। उन्होंने मौलवियों और गाजियों को गाँव-गाँव भेजकर इस धर्मयुद्ध के लिए सैनिक तैयार करने आरम्भ कर दिए थे। मुसलमानों को हिन्दू राज्य के विरुद्ध जेहाद (धर्मयुद्ध) के लिए ललकारा जा रहा था।

कसूर में होनेवाले नरसंहार को टालने के लिए महाराज रणजीतसिंह ने पहले तो नवाब कुतबदीन खाँ के पास उसे समझाने के लिए सरदार फतेहसिंह कालियावाला और अजीजदीन को अपना शान्तिदूत बनाकर भेजा। उन दोनों ने जाकर नवाब को युद्ध से होनेवाले, दोनों पक्षों की हानि-लाभ के विषय में समझाया। बात मानना तो एक ओर रहा अपितु नवाब ने फकीर अजीजदीन का अपमान किया कि वह मुसलमान होकर हिन्दू का पक्ष प्रस्तुत कर रहा है। दूत अपना-सा मुख लेकर महाराज के पास लौट आए।

सरदार फतेहसिंह कालियावाला ने वापस आकर जब महाराज को सारी बात बताई, जिसमें फकीर अजीजदीन के अपमान करने की

बात भी सम्मिलित थी तो उनको क्रोध आ गया। महाराज ने निश्चय कर लिया कि दोनों नवाबों को पाठ पढ़ाना ही होगा। तदनुसार उन्होंने अपनी सेना को कसूर पर चढ़ाई करने का आदेश दे दिया।

नवयुवक तथा नव नियुक्त नलवा की 'सिंह हृदय' सेना भी, जिसे बोलचाल की भाषा में उस समय 'शेर-दिल' कहा जाता था, इस युद्ध में भेजी गई। यह महाराजा की प्रिय सेना थी और उतना ही प्रिय था उनका सेना-नायक नलवा। नलवा अपनी सेना लेकर नोशहरा पहुँच गया। उसकी सेना पहले पहुँचनेवालों में से थी।

10 फरवरी 1807 को प्रातःकाल कसूर पर धावा बोल दिया गया। महाराजा रणजीतसिंह स्वयं इस युद्ध में सम्मिलित हुए थे। महाराज की सेना की संख्या 10 सहस्र थी जबकि नवाब की नियमित सेना की संख्या 25 सहस्र और उतने ही अनियमित सैनिक थे जो मुल्लाओं के भड़काने पर धर्मयुद्ध के लिए मैदान में उतारे गये थे। इस प्रकार 50 सहस्र मुसलमानी सेना से केवल 10 सहस्र हिन्दू सेना युद्ध कर रही थी।

रणजीतसिंह की सेना का उत्साह असीम सागर की भाँति उमड़ा पड़ रहा था तो उधर जेहाद की लालसा धर्मयोद्धा मुसलमानों को भी मतवाला बना रही थी। इस प्रकार कभी एक आगे बढ़ता तो कभी दूसरा। दिन-भर दोनों सेनाओं में घमासान युद्ध होता रहा। दिन ढलते तक नवाब की सेना का उत्साह भंग हो गया।

एक बार मुगल सेना का उत्साह भंग हुआ कि वह भागने लगी। भाग कर उसने दुर्ग में शरण लीं। नलवा के दल ने उन भागते हुए सैनिकों का पीछा किया। अकेले उसकी वाहिनी ने दो सौ से भी अधिक मुसलमान सिपाहियों को मौत के घाट उतार दिया। इसी प्रकार अन्य वाहिनी के सैनिकों ने भी उनका पीछा कर उनको भारी हानि पहुँचाई।

मुसलमान सेना कसूर के किले में जा छिपी। किले पर सहसा आक्रमण करना सहज नहीं था। उधर दिन-भर के घमासान युद्ध के कारण सैनिक बुरी तरह थक गए थे, कुछ घायल भी हो गये थे। अतः यही उचित समझा गया कि कुछ दिन विश्राम करके फिर दुर्ग पर आक्रमण किया जाए।

इस प्रकार मुसलमान सेना दुर्ग के भीतर घिर गई। तब 18 फरवरी की प्रातःकाल महाराज की सेना ने सहसा दुर्ग पर धावा बोल दिया। मुसलमान सैनिक भी विश्राम करने से उत्साहित अनुभव कर रहे थे। अतः पुनः दोनों ओर से समानता का युद्ध हुआ। दस दिन तक घमासान युद्ध होता रहा। दुर्ग का द्वार किसी प्रकार भी खुलने को नहीं आ रहा था। तब नायक नलवा ने अद्‌भुत कार्य किया। उसने अपनी सेना द्वारा दुर्ग की दीवार की नीव में तीन स्थानों पर सुरंगें लगा दीं। उन सुरंगों में बारूद के कुप्पे भर दिये गये।

दुर्ग में सुरंगें लगाने का कार्य रात को किया गया था और पौ फटने से पूर्व ही यह कार्य समाप्त हो गया था। पौ फटते ही उन पलीतों में आग लगा दी गई। बारूद में आग लगी तो सुरंगें फट पड़ीं और दुर्ग की पश्चिमी दीवार गिर गई।

फिर क्या था, विद्युत गति से नलवा अपनी सेना लेकर दुर्ग में घुस गया। उसके पीछे अन्य सेनाएँ भी जा पहुँचीं।

नवाब की सेना असंख्य थी। उनमें उत्साह भी बहुत ज्यादा था। किन्तु दीवार गिरने से उनका उत्साह भंग हो गया। मध्यान्ह तक वे वीरता से लड़ते रहे। नवाब स्वयं युद्ध में सम्मिलित था, किन्तु विधि को कुछ और ही स्वीकार था। नवाब की सेना के पैर उखड़ने लगे। मध्याह्न बीतते-बीतते नवाबी सेना के छक्के छूटने लगे। सहसा उसने मैदान छोड़कर भागना आरम्भ कर दिया। बस फिर क्या था, एक टुकड़ी भागने लगी कि दूसरे को भी भागने का बहाना मिल गया।

दुर्ग पर महाराजा की सेना का अधिकार हो गया। नलवा की सेना ने नवाब कुतबदीन को बन्दी बना लिया। वह भागने में सफल नहीं हो सका।

इस प्रकार इस प्रथम युद्ध में ही नलवा ने न केवल सेना पर अपितु महाराजा के हृदय पर भी अपनी वीरता की धाक जमा दी। इस युद्ध में सैनिक के नाते वह पहली बार ही लड़ने के लिए उतरा था। यहाँ उसने अपनी युद्ध-कुशलता का और नायक की चातुरी का अनुपम परिचय दिया। दुर्ग की दीवार पर सुरंग लगाने की उसकी ही योजना थी और भागते हुए नवाब को पकड़ने के लिए भी उसने ही अपने युद्ध-कौशल का परिचय दिया था।

28 फरवरी 1807 को कसूर प्रदेश पर महाराजा रणजीतसिंह का राज्य हो गया। इस निर्णायक युद्ध में अद्भुत पराक्रम का प्रदर्शन करने पर महाराजा बहुत प्रसन्न हुए और सरदार हरिसिंह नलवा को उन्होंने 30 हजार रुपए वार्षिक की जागीर प्रदान की।

मुलतान पर विजय

कसूर के नवाब कुतबदीन को विद्रोह के लिए उकसाने में मुलतान के नवाब मुजफ्फरखाँ का बहुत बड़ा हाथ था। उसने युद्ध में उसकी यथाशक्ति सहायता भी की थी। यदि मुजफ्फर खाँ की प्रेरणा और सहायता न होती तो कदाचित् वह महाराजा से युद्ध के लिए तैयार न होता। महाराजा रणजीतसिंह इस बात को भलीभाँति जानते थे। इसलिए उन्होंने उसका फण भी कुचलने का निश्चय कर लिया।

जिस प्रकार कसूर पर आक्रमण के अवसर पर सैनिक तैयारी की गई थी, उसी प्रकार मुलतान पर आक्रमण के लिए तैयारी की गई। और फिर 15 फरवरी सन् 1810 को मुलतान के लिए कूच कर दिया गया। जैसा कि पहले भी बताया गया है कि हिन्दू व्यर्थ के रक्तपात से बचना

चाहता है। अतः मुलतान पहुँचकर नवाब को पत्र लिखा गया कि उसने कसूर में विद्रोह कराया था और अब स्वयं भी विद्रोही बन गया है। तदपि यदि वह पिछला सारा राजस्व और पर्याप्त अर्थदण्ड से महाराज की सेवा में उपस्थित होकर क्षमायायना करे तो उसको क्षमा कर दिया जाएगा अन्यथा उस पर आक्रमण किया जायेगा।

नवाब ने इसका सीधा उत्तर नहीं दिया, वह टाल-मटोल करता रहा। वह इस अवसर का लाभ उठाकर अपनी स्थिति और भी सुदृढ़ कर लेना चाहता था। महाराज उसकी यह चाल भाँप गये और उन्होंने अपनी सेना को उस पर आक्रमण करने का आदेश दे दिया। नवाब इसके लिए तैयार नहीं हो पाया था। वह मैदान छोड़कर दुर्ग में घुस गया। मुलतान पर महाराजा का अधिकार हो गया।

दुर्ग को घेर लिया गया। न कोई बाहर से उसके भीतर जा सकता था और न भीतर से कोई बाहर ही आ सकता था। नवाब अपनी सेना सहित दुर्ग में बन्दी सा बन गया। इस घटना का सुपरिणाम यह हुआ कि मुलतान के समीप के क्षेत्रों के शासकों ने महाराजा की अधीनता स्वीकार कर ली। इनमें बहावलपुर का नवाब सदीक मोहम्मद खाँ भी था।

मुलतान का युद्ध किसी निर्णायक स्थिति पर नहीं पहुँच रहा था। भीतर असीम खाद्य सामग्री एकत्रित थी। तब महाराजा ने आह्वान किया कि कुछ बलिदानी वीर आगे बढ़कर दुर्ग के दीवार की नींव में सुरंग बना उसमें बारूद भरने का कार्य करें, जैसा कि कसूर में किया गया था। किन्तु कसूर और यहाँ की स्थिति में अन्तर था। कसूर का नवाब इस सम्बन्ध में सावधान नहीं था। मुजफ्फर खाँ ने कसूर से शिक्षा ग्रहण कर ली थी। इसलिए दुर्ग की चौड़ी दीवार पर उसने अपने तोपखाने लगवा दिये थे। अतः दीवार की नींव पर सुरंग लगाना सरल कार्य नहीं था।

सुरंग लगाने का कार्य करने के लिए जानेवालों में महाराज स्वयं सबसे पहले तैयार हो गये। सरदार हरिसिंह नलवा ने तब आगे बढ़कर कहा, ''महाराज! हमारे रहते आपको यह सब करने की आवश्यकता नहीं।''

महाराज ने कहा, ''नहीं, मैं अवश्य जाऊँगा। आप जैसे शूरवीरों पर मुझे गर्व है। मुझे यह उचित नहीं कि आप लोगों को मैं मृत्यु के मुख में धकेल दूँ और स्वयं पीछे रह जाऊँ।''

सेनानायकों ने महाराज को बहुत समझाया किन्तु वे मान नहीं रहे थे। अन्त में हरिसिंह नलवा ने ही इस गुत्थी को सुलझाया। उसका कहना था कि उस जैसे सेनानायक तो एक नहीं अनेक उत्पन्न हो सकते हैं और तैयार भी किये जा सकते हैं किन्तु 'पंजाब केसरी' तो फिर जन्म नहीं ले सकता। तब बाध्य होकर महाराज को पीछे रह जाना पड़ा।

इस घटना से एक लाभ हुआ। सेना में अदम्य उत्साह भर गया। वह समझ गई कि उनका राजा भी उनकी ही भाँति मर-मिटने के लिए तत्पर रहता है। इस प्रकार हरिसिंह नलवा आदि नायकों के नेतृत्व में 75 सैनिकों का एक दल इस कार्य के लिए अग्रसर हुआ। ज्योंही यह दल आगे बढ़ा कि दुर्ग की प्राचीर पर से उन पर गोलियाँ बरसने लगीं। इससे अनेक योद्धा हताहत हुए, किन्तु वे अपने कार्य से विचलित नहीं हुए। उसी दशा में उन्होंने सुरंगें बनाईं, उनमें बारूद भरा और फिर उनमें आग भी लगा दी।

इस कार्य में तनिक-सी असावधानी हो गई। नलवा आदि समझ नहीं पाए कि बारूद के धमाके के साथ ही दीवार नीचे आ सकती है और वे उसके नीचे दब सकते हैं। और वही हुआ। विस्फोट होते ही दीवार नीचे आ गिरी और हरिसिंह नलवा, निहालसिंह और अतरसिंह उसके नीचे दब गये।

दीवार का टूटना था कि हिन्दू सेना दुर्ग के भीतर घुसने को उतावली हो उठी। प्रत्येक सैनिक यही चाहता था कि वह सबसे पहले दुर्ग में प्रविष्ट होकर अपना करतब दिखाए। इस होड़ में किसी को यह ध्यान ही नहीं रहा कि उनके नायक दीवार के नीचे दबे पड़े हैं। मुसलमान सैनिक सुदृढ़ स्थिति में थे। उन्होंने अवसर से लाभ उठाया और राल से जलती हुई हाँडियाँ नीचे दबे नायकों पर उड़ेल दीं। बस फिर क्या था, देखते-देखते उनके कपड़ों को आग लग गई। एक हाँडी सीधे नलवा पर आकर गिरी, जिससे उनके कपड़े जल जाने से उनका सारा शरीर झुलस गया।

सौभाग्य की बात थी कि उन्हीं की वाहिनी के एक सैनिक ने उनको इस अवस्था में देख लिया। वह दौड़कर उनके समीप गया। उसने उनकी वर्दी को फाड़ डाला। इस प्रकार उनके शरीर को लगने वाली आग बुझाकर उसने उनके आहत शरीर को कन्धे पर डाला और बरसती गोलाबारी में उन्हें बाहर निकाल लाया। सरदार निहालसिंह और अतरसिंह को भी निकाल लिया गया। उन्हें छावनी पहुँचा दिया गया। किन्तु अतरसिंह छावनी पहुँचने से पूर्व ही परलोक सिधार गए।

उधर युद्ध अपनी चरम सीमा पर था। देखते-देखते सारी सेना दुर्ग पर चढ़ गई थी। इस अप्रत्याशित आक्रमण से नवाब मुजफ्फर खाँ का साहस टूट गया। उसने तुरन्त सफेद झंडा दिखाकर अधीनता स्वीकार करने का संकेत किया। उसके झंडा दिखाने पर युद्ध रोक दिया गया। उसके बाद न किसी मुसलमान सैनिक ने भागने का यत्न किया और न किसी हिन्दू सैनिक ने किसी की हत्या की अथवा किसी को बन्दी बनाया।

मुजफ्फर खाँ को महाराज के सम्मुख उपस्थित किया गया। महाराज को उस पर बड़ा क्रोध आ रहा था। सेना के नायक भी उससे क्रुद्ध थे। किन्तु महाराजा रणजीतसिंह थे तो हिन्दू ही। कसूर का

किला जीतने के बाद जैसे सबको आशा थी कि नवाब कुतबदीन के टुकड़े-टुकड़े करवाकर उसके मांस को कुत्तों को खिला दिया जाएगा, किन्तु हुआ उसके विपरीत। महाराज ने उसके गिड़गिड़ाने पर उसको क्षमा कर दिया। न केवल इतना उसको निर्वाह के लिए कुछ सम्पत्ति भी दे दी गई।

इसी प्रकार जब मुजफ्फर खाँ को महाराजा के सम्मुख उपस्थित किया गया तो उसके प्रति भी सेना और सेना-नायकों में अत्यन्त क्रोध था। किन्तु वे अब महाराज के स्वभाव से परिचित हो गये थे और हुआ भी वही। जब मुजफ्फर खाँ ने अपनी लम्बी श्वेत दाढ़ी पर हाथ लगाकर कहा कि उसकी वृद्ध आयु का ही ध्यान कर उसको क्षमा कर दिया जाए तो महाराज ने उसको भी उसी प्रकार क्षमा कर दिया जिस प्रकार कुतबदीन को किया था।

मुजफ्फर खाँ ने ढाई लाख रुपया राजस्व और 22 बहुमूल्य घोड़े प्रतिवर्ष महाराज को देना स्वीकार किया और कभी विद्रोह न करने की सौगन्ध भी खाई। उसके बहनोई अबूबकरखाँ को प्रतिभू के रूप में लाहौर में रख लिया गया।

इस सबसे अवकाश पाकर जब महाराज अपने खेमे में वापस आये तब उन्हें विदित हुआ कि इस युद्ध में अपना एक निष्ठावान नायक वीरवर अतरसिंह को तो वे खो ही चुके हैं वैसे ही दो अन्य प्रतापी वीर हरिसिंह नलवा और निहालसिंह अटारीवाले मरणासन्न रूप में आहत हैं। तुरन्त ही हकीम अजीजुद्दीन को उनकी प्रारम्भिक चिकित्सा का आदेश दिया गया। उन दोनों की दशा देखकर एक बार तो सब निराश हो चुके थे किन्तु धीरे-धीरे दोनों स्वस्थ होने लगे। तब उन्हें लाहौर के बड़े चिकित्सालय में भेज दिया गया।

बाद में जब आहत सैनिक और नायक स्वस्थ हो गये तो फिर महाराज ने इस विजय के उपलक्ष्य में एक बहुत बड़ा दरबार किया।

अपनी सेना की उन्होंने भूरि-भूरि प्रशंसा की। और उस भरे दरबार में तथा सब सैनिकों की उपस्थिति में उन्होंने इस युद्ध में हताहत होनेवाले सभी वीरों की इतनी प्रशंसा की कि आहत सैनिक अपना दुःख भूल गये। यहाँ तक कि मृत सैनिकों के परिवार वालों को भी, देश के लिए अपने प्राण न्योछावर करनेवाले अपने परिजनों की, अब महाराज द्वारा प्रशंसा किये जाने तथा कुछ न कुछ आर्थिकरूपेण क्षतिपूर्ति किये जाने के उपरान्त उतना मलाल नहीं रह गया था।

क्योंकि मुलतान के इस युद्ध में सरदार हरिसिंह नलवा ने अपना सिर हथेली पर रखकर युद्ध मोर्चे को सँभाला था और फिर उसी प्रकार दुर्ग की दीवार को ढाने में साहस और वीरता का परिचय दिया था, इससे न केवल महाराज अपितु सभी सैनिकों में उनका सिक्का जम गया था। इस अवसर पर महाराज ने उनको 20 हजार रुपया वार्षिक की सम्पत्ति प्रदान की।

सरदार हरिसिंह नलवा की यह क्रमशः दूसरी विजय थी। इस युद्ध में जिस प्रकार उसके शौर्य का सिक्का अपने महाराजा और अपनी सेना पर जम गया उसी प्रकार शत्रुपक्ष को भी विदित हो गया कि हरिसिंह नलवा वास्तव में 'नलवाँग' ही है।

अत्याचारियों का दमन

शाहपुर प्रदेश के अन्तर्गत मिट्ठा टिवाणा में अहमदयार खाँ का शासन था। महाराज को सूचना मिली कि टिवाणे मुसलमान हिन्दू प्रदेश पर डाके डालकर वहाँ की प्रजा को निरन्तर लूट रहे हैं। इससे न केवल धन की ही हानि हो रही थी अपितु हत्याएँ भी हो रही थीं। पशुओं को चुरा लिया जाता था। वहाँ की हिन्दू जनता बहुत कष्ट अनभुव कर रही थी।

महाराज रणजीतसिंह को ज्योंही इसका ज्ञान हुआ तो उन्होंने

सरदार हरिसिंह और सरदार दलसिंह को अपनी-अपनी सेना लेकर उधर जाने का आदेश दिया। 7 फरवरी 1812 को ये दोनों नायक अपनी-अपनी सेना लेकर मिट्ठा टिवाणे के लिए कूच कर गए। वहाँ पहुँचते ही उन्होंने मिट्ठा टिवाणा को घेर लिया।

हिन्दू सेना के आने की सूचना मिलते ही टिवाणे भी लड़ने के लिए तैयार हो गये। अहमदयार खाँ स्वयं अपनी सेना का नेतृत्व कर रहा था। दिन-भर घमासान युद्ध होता रहा। टिवाणे बड़े साहस से नलवा की सेना का सामना कर रहे थे। किन्तु हरिसिंह की सेना की तोपों ने उनकी महलमाड़ियाँ धराशायी कर दीं।

यदपि हरिसिंह नलवा नहीं चाहते थे कि अधिक रक्तपात हो अथवा सम्पत्ति का नाश हो। इसलिए शाम होने पर अहमदयार खाँ के पास दूत द्वारा कहलाया गया कि वह आज दिन-भर हमारी सेना का युद्ध-कौशल देख चुका है। उसको यह भी विदित हो चुका है कि उसकी अपनी सेना कितने पानी में है। इसलिए यदि वह अपना भला चाहता है तो रातोंरात नगर और गढ़ी को खाली कर के वहाँ से भाग जाय। हमारी सेना उसके भागने में किसी प्रकार की बाधक नहीं बनेगी। किन्तु यदि उसने इसे स्वीकार न किया तो फिर जो रक्तपात होगा उसका सारा उत्तरदायित्व अहमदयार खाँ पर होगा।

अहमदयार खाँ ने अपने सहयोगियों से परामर्श किया। उनको भी इसी में अपनी भलाई दिखाई दी। इसलिए उसने कहला भेजा कि वे लोग नगर और गढ़ी खाली कर रहे हैं।

नलवा की सेना यह सब देख रही थी। किन्तु वह आश्वस्त हो जाना चाहती थी कि वास्तव में अहमदयार खाँ नगर और गढ़ी खाली भी कर रहा है अथवा यों ही धोखा दे रहा है। नगर खाली करनेवालों को केवल अपनी आवश्यक सामग्री ले जाने की अनुमति थी, शस्त्रास्त्र नहीं।

सिवाणों ने रातोंरात गढ़ी और नगर को खाली कर दिया और अगले दिन प्रातःकाल गढ़ी पर हिन्दू सेना ने अधिकार कर लिया। राजधानी पर अधिकार हो जाने से यह सारा प्रदेश महाराजा रणजीतसिंह के राज्य का अंग बन गया।

तेज दौड़नेवाली साँडनी सवार के माध्यम से यह शुभसमाचार महाराजा के पास भेज दिया गया। सन्देशवाहक को महाराज ने पुरस्कृत किया और नलवा को कहला भेजा कि उनकी अगली आज्ञा तक वे लोग वहाँ का भली प्रकार पक्का प्रबन्ध कर लें।

सरदार हरिसिंह ने सरदार दलसिंह की सहायता से उस प्रदेश का अच्छा प्रबन्ध कर दिया। वे अभी इस कार्य से निवृत्त हुए ही थे कि महाराज का उनको आगे की कार्यवाही के लिए पत्र मिल गया।

बहावलपुर के अन्तर्गत एक स्थान था उच्च। उच्च के गेलानी और बुखारी सैयद हिन्दुओं पर बहुत अत्याचार करने लगे थे। उनके राज्य में किसी हिन्दू का रहना दूभर हो गया था। किसी सशक्त हिन्दू को यदि वे सामने से आता देखते तो अपने मुख पर कपड़ा डाल लिया करते और यदि कोई साधारण-सा हिन्दू दिखाई दिया तो वे उसके मुख पर ही थूक दिया करते थे। सैयद लोग मुगल काल से ही स्वतन्त्र और उच्छृंखल जीवन व्यतीत कर रहे थे। अब तो हिन्दुओं को दुर्बल देखकर उनका उत्साह और भी बढ़ता जा रहा था।

सैयदों की इस घृणा और अत्याचार का यह परिणाम हुआ कि उस प्रदेश में न तो कोई हिन्दू बस सकता था और न बसने ही दिया जाता था। सैयद भाँति-भाँति के अत्याचार करते। कोई भी उनको रोकने वाला नहीं था। दिन-दहाड़े लूट-पाट करना तो उनका नित्य का काम हो गया था।

महाराज का आदेश पाते ही नलवा सरदार दलसिंह को साथ लेकर उच्च पर जा चढ़ा। सैयद भी जैसे-जैसे लड़ने को तैयार हो

गये। किन्तु यहाँ पर भी एक दिन से अधिक युद्ध नहीं चल पाया। हिन्दू सैनिकों के सम्मुख बुखारी सैयदों के पैर उखड़ गये। जो आँखें अब तक घृणा और अहंकार से किसी हिन्दू को देख भी नहीं सकती थीं, वे नलवा की सेना के तेज के सम्मुख चकाचौंध हो ऊँची उठ ही नहीं सकीं। इस प्रकार नलवा ने उनका मान-मर्दन किया। अन्य कोई उपाय न देख वे मुख में तिनका रखकर सरदार हरिसिंह के पास आ उपस्थित हुए। उन्होंने 25 हजार रुपया दण्ड दिया और भविष्य में शान्ति से रहने और रहने देने का वचन भी दिया।

इन दोनों युद्धों में सरदार दलसिंह भी हरिसिंह नलवा के साथ था। उसने जब नलवा की वीरता की कहानी महाराजा को सुनाई तो वे बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने मिट्ठा टिवाणा का प्रदेश हरिसिंह नलवा को पुरस्कार में प्रदान कर दिया।

इस प्रकार क्रमशः हरिसिंह नलवा का सम्मान बढ़ता जा रहा था और उसके साथ ही उसकी जागीर भी बढ़ती जा रही थी।

अटक दुर्ग पर विजय

भारत विभाजन से पूर्व इस देश की पश्चिमी सीमा अटक से आरम्भ होती थी। अटक अब पाकिस्तान में है। अटक में सिन्धु नदी के ऊपरी भाग पर एक बहुत बड़ा दुर्ग बना हुआ था। जिन दिनों का हम वर्णन कर रहे हैं उन दिनों यह दुर्ग अफगानों के अधिकार में था। उनकी ओर से जहाँदाद खाँ वहाँ का शासक था। अटक का दुर्ग किसी विदेशी के अधिकार में रहे, यह भारत के लिए भय की बात थी। इस बात को ध्यान में रखते हुए उस पर अधिकार करने की जब बात आई तो सरदार हरिसिंह नलवा का स्मरण हो आना स्वाभाविक था।

बस, फिर क्या था। हरिसिंह नलवा को अपनी सेना लेकर अटक की ओर जाने का आदेश हो गया। उनके साथ एक दीवान

मोहकमचन्द को भी भेजा गया। हरिसिंह अपनी सेना लेकर जेहलम के पास पहुँचे ही थे कि उनको पता चला कि हजरो के निकट शमसाबाद में फतेह खाँ वजीर अपने भाई दोस्तमोहम्मद खाँ के साथ 15 हजार स्थायी और इतनी ही अस्थायी सेना लेकर उनका रास्ता रोकने के लिए खड़ा है।

शमसाबाद से दोस्त मोहम्मद खाँ ने हरिसिंह नलवा को पत्र लिखा कि यदि वे पेशावर उसको दे दें तो वह उनको भेंट दे दिया करेगा अन्यथा वह एक बहुत बड़ी सेना लेकर उनसे युद्ध करेगा।

हरिसिंह को विचार करने में एक क्षण भी नहीं लगा। उन्होंने कहलवाया कि अब पेशावर का मिलना कठिन है। इस स्थिति में युद्ध करना या सन्धि करना उसकी इच्छा पर निर्भर करता है। हम प्रत्येक प्रकार से तैयार होकर आये हैं। यह उत्तर पाकर दोस्तमोहम्मद बौखला गया। युद्ध की तैयारी होने लगी।

सरदार हरिसिंह ने अपनी सेना को तीन भागों में विभक्त कर उनको उचित स्थानों पर नियुक्त कर दिया। युद्ध आरम्भ ही होने वाला था कि तब तक महाराज रणजीतसिंह भी युद्ध मोर्चे पर जा पहुँचे। सरदार हरिसिंह नलवा ने उनको सारी स्थिति समझाई तो उन्होंने एक बार युद्ध रोकने का यत्न करना चाहा। इसके लिए उन्होंने सुलतान मोहम्मद नाजिम और फकीर अजीजदीन को भेजकर दोस्तमोहम्मद को समझाने का यत्न करना चाहा। महाराज ने कहला भेजा कि हम दोनों ही बूढ़े हो गये हैं, कहीं ऐसा न हो कि दोनों इस लड़ाई में कूच कर जाएँ। इस पर भी यदि उसका मन लड़ने को ही करता हो तो फिर सेना को एक ओर छोड़कर दोनों परस्पर द्वन्द्व युद्ध कर लें। इससे ही विजय-पराजय का निर्णय हो जाए।

दोस्त मोहम्मद पहले तो सन्धि करने के लिए तैयार हो गया, किन्तु फिर उसको काजियों ने भड़का दिया। उन मूर्ख काजियों के

भड़काने पर उसने फकीर अजीजदीन को यह कहकर बन्दी बना लिया कि वह मोमिन होकर भी काफिर का नौकर है और मोमिनों के सामने काफिरों की प्रशंसा करता है।

अन्त में कोई अन्य उपाय न देख 12 जुलाई को अफगानों पर आक्रमण कर दिया गया। अफगानों में भी उत्साह की कमी नहीं दिखाई दे रही थी। क्योंकि ज्यों ही हरिसिंह की सेना आगे बढ़ी कि अफगानों ने भी अपनी तोपों का मुख उनकी ओर कर दिया। बस फिर क्या था, दोनों ओर से तोप गोले बरसने लगे। भाले से भाला टकराया तो तलवार से तलवार भी टकराई। इस प्रकार रात का अँधेरा होने तक यह युद्ध चलता रहा।

अगले दिन प्रात:काल ही हरिसिंह ने अपनी सेना की इस प्रकार व्यूह-रचना की कि चारों ओर से उनके सैनिक दल बनाकर शत्रु पर टूट पड़े। अफगान भी सामना करने के लिए आ डटे। बड़ी वीरता के साथ उन्होंने हरिसिंह के आक्रमण को रोकने का यत्न किया। दोपहर तक घमासान युद्ध चलता रहा। गाजी लोगों के भड़काने पर गाँवों के मुसलमान धर्मयुद्ध करने के लिए आये। बड़े उत्साह में भरे तोप गोलों के सामने वे आते और भुने हुए मकई के दाने की भाँति उछलकर दूर जा गिरते। इस प्रकार आहतों और मृतकों के शरीरों से युद्ध-मैदान छा गया। तलवारों, बन्दूकों और तोपों की तुमुल ध्वनि इस दृश्य को और भी अधिक भयावह बना रही थी।

एक ओर नलवा अपने सैनिकों का साहस बढ़ा रहा था तो दूसरी ओर दोस्तमोहम्मद खाँ और फतेह खाँ अपने मुसलमानों को गाजी का सम्मान देकर उन्हें धर्मयुद्ध के लिए प्रोत्साहित कर रहे थे। दोनों ओर से भीषण संग्राम चल रहा था। दोनों ही पक्ष अपना बाहुबल प्रदर्शित करने की होड़ लगाये बैठे थे। दोनों को विश्वास था कि कल जो बीत गया वह बीत गया, आज तो बस उसके दल की ही विजय है।

जहाँ एक ओर आग्नेय अस्त्र भीषण ताप दे रहे थे वहाँ आषाढ़ की भीषण गर्मी उसमें और भी उष्णता भरकर सैनिकों को तपा रही थी। इसमें दोनों ही ओर के सैनिक भुन रहे थे। किन्तु नलवा तो बस नलवा ही था। उसने ठीक मौके पर दोस्तमोहम्मद खाँ पर इस प्रकार तलवार चलाई कि वह घोड़े से गिरकर नीचे भूमि पर आ पड़ा। उसको गिरते देख अफगान सेना में शोर मच गया कि दोस्त-मोहम्मद खाँ मारा गया है। बस फिर क्या था उसकी अपनी ही सेना में भगदड़ मच गई।

नलवा ने इसे अच्छा अवसर जानकर अपनी सेना को आगे बढ़ा दिया। दिन ढलते ही सारी अफगान सेना या तो युद्ध में खेत रही या फिर भागकर लुप्त हो गई। नलवे की सेना ने सिन्धु नदी के तीर तक उन भागनेवालों का पीछा किया और इस प्रकार उसने अटक के दुर्ग पर अपना अधिकार कर लिया।

महाराज को जब यह समाचार मिला तो वे प्रसन्नता से फूल गए। दूत को उन्होंने दो स्वर्ण कंकणों से पुरस्कृत किया। इस उपलक्ष्य में लाहौर, अमृतसर और बटाला आदि नगरों में कई दिनों तक दीपमाला जगमगाती रही। उसके बाद अफगान ने फिर बहुत दिनों तक सिर नहीं उठाया। इसमें नलवा को प्रभूत युद्ध सामग्री भी प्राप्त हुई।

मुजफ्फर खाँ की पराजय

मुलतान के नवाब मुजफ्फर खाँ का उल्लेख हम मुलतान विजय के सन्दर्भ में पहले कर आए हैं कि उस पर विजय प्राप्त कर ली गई थी। उसने सारा पिछला राजस्व दे दिया था, दण्ड राशि का भुगतान भी कर दिया था और भविष्य में निरन्तर राजस्व देते रहने का वचन भी दिया था। किन्तु वह इतना निर्लज्ज था कि हिन्दू सेना के वहाँ से हटते ही वह फिर अपनी मनमानी करने लगा। तब फिर उसको परास्त

करने के लिए जाना पड़ा था। ऐसा वह बार-बार करता था। प्रत्येक बार वह क्षमा माँगकर अथवा गिड़गिड़ाकर बचता रहा था। इस प्रकार सन् 1802 से सन् 1818 तक उसने सात बार विद्रोह किया और सातों बार उसको क्षमा प्राप्त होती रही।

किन्तु इस बार निश्चय कर लिया गया था कि युद्ध में उसको परास्त कर मुलतान को महाराजा रणजीतसिंह के राज्य का अभिन्न अंग बना लिया जाएगा। उधर जब मुजफ्फर खाँ को इस निश्चय का ज्ञान हुआ तो उसने अपने 8 बेटों, अनेक भतीजों तथा पोतों और उतने ही मौलवियों को अपनी रियासत में धर्मयुद्ध का प्रचार करने के लिए भेज दिया। बस फिर क्या था, सदा की भाँति इस बार भी धर्मान्ध मुसलमानों का झुण्ड मुजफ्फर खाँ के झंडे के नीचे एकत्रित होने लगा। उसके साथ युद्ध सामग्री और खाद्य सामग्री दोनों अत्यधिक मात्रा में एकत्रित थी। अत: उसने भी इस बार अन्तिम युद्ध की तैयारी कर ली।

महाराजा रणजीतसिंह की ओर से इस युद्ध में पाँच नायक भेजे गये। सरदार हरिसिंह नलवा, राजकुमार खड्गसिंह, सरदार फतेहसिंह, सरदार धन्नासिंह और श्यामसिंह अटारीवाले। रास्ते में हरिसिंह नलवा के दल ने अकस्मात् मुजफ्फरगढ़ पर आक्रमण कर उस पर अपना अधिकार कर लिया।

महाराज रणजीतसिंह की समस्त सेना जब मुलतान पहुँच गई तो राजकुमार खड्गसिंह ने खलीफा नुरद्दीन, मौलाना मिरजा हुसैन हिन्दुस्तानी और दीवान मोतीराम को नवाब के पास भेजकर कहलवाया कि व्यर्थ में रक्तपात करने से कोई लाभ नहीं। इसलिए यदि वह भविष्य में शान्तिपूर्वक रहने का वचन दे तो युद्ध नहीं किया जाएगा और नवाब को उसके निर्वाह के लिए एक बड़ी जागीर भी दे दी जाएगी।

इस बार नवाब कुछ अधिक ही प्रमत्त हो गया था। उसको अपनी सेना और गाजियों की सहायता तथा अपने दुर्ग की दृढ़ता पर बड़ा अभिमान हो रहा था। उसने राजकुमार का सुझाव अस्वीकार कर दिया। कदाचित् वह अब भी यही समझता था कि जिस प्रकार पिछली छः बार हारने पर क्षमायाचना कर और भेंट देकर बच गया था उस प्रकार अब भी बच ही जाएगा।

इस स्थिति में 2 फरवरी 1818 को उस पर आक्रमण कर दिया गया। उसके दुर्ग पर इस प्रकार तोपों की मार की गई कि उसकी प्राचीर दो स्थान पर से फट गई। किन्तु नवाब के बेटे सावधान थे। उन्होंने तुरन्त उस स्थान पर रेत के बोरे भरकर उसकी रक्षा की। तीन दिन तक घमासान युद्ध होता रहा। परिणाम कुछ नहीं निकला। किन्तु चौथे दिन तोप के गोलों से नगर का लाहौरी द्वार टूट गया।

बस फिर क्या था। सरदार हरिसिंह नलवा ने अवसर देखा और सेना लेकर नगर में घुसता चला गया। नवाब की सेना उसका सामना करने में असमर्थ रही। फिर भी जमकर युद्ध हुआ किन्तु अन्त में नगर पर नलवा का अधिकार हो गया। आठ फरवरी को नवाब मुजफ्फर खाँ अपनी बहुत सारी सेना लेकर नगर पर पुनः अधिकार करने के लिए आया किन्तु पार न पा सका। अन्त में वह अपनी सारी सेना लेकर दुर्ग के भीतर जा बैठा।

दुर्ग को चारों ओर से घेर लिया गया और इस प्रकार की व्यूह-रचना की गई कि जिससे न तो दुर्ग के भीतर से कोई बाहर आ सके और न बाहर से कोई भीतर जा सके। बाहर के संसार से दुर्ग वालों का बिल्कुल ही नाता टूट गया। महाराज की सेना का विचार था कि खाद्य-सामग्री समाप्त होने पर सहज ही नवाब को आत्मसर्मपण के लिए विवश होना पड़ेगा। किन्तु नवाब ने उस दुर्ग में इतनी सामग्री एकत्रित कर रखी थी कि वह एक वर्ष तक भी समाप्त नहीं हो सकती थी।

तीन मास तक दुर्ग पर घेरा पड़ा रहा और निरन्तर दुर्ग पर बाहर से आक्रमण भी होता रहा। दुर्ग के द्वार पर मदमस्त हाथियों को टकराया गया किन्तु उसका कोई भी द्वार टस से मस नहीं हुआ। हिन्दू सेना समझ गई कि दुर्ग पर अधिकार करना सहज नहीं है। और फिर भयंकर गरमी के कारण उनकी सेना में कहीं-कहीं हैजे का भी प्रकोप होने लगा था।

महाराज को जब यह सूचना भेजी गई तो उनको चिन्ता होने लगी। उन्होंने तुरन्त फूलासिंह अकाली से सहायता की पुकार की। जिस दिन अकाली अपनी सेना लेकर मुलतान पहुँचा कि उसी दिन तोपों के गोले से खिजरी दरवाजे के साथ बुर्ज भी ढह गया। इसके किले की दीवार पर दो बड़े-बड़े छेद हो गए। अकाली फूलासिंह ने अवसर देखा और अपनी सेना लेकर उन छिद्रों के मार्ग से वह दुर्ग में प्रविष्ट हो गया।

बस फिर क्या था, सारी हिन्दू सेना उत्साह में भरकर निरन्तर दुर्ग में प्रविष्ट होती गई। फूलासिंह के बाद नलवा ही वह दूसरा नायक था जो दुर्ग में प्रविष्ट हुआ था। नलवा और अकाली ने अन्य नायकों की सहायता से वह घमासान युद्ध किया कि नवाब के छक्के छूट गये। उसके बेटों और पोतों समेत उसको यमलोक भेज दिया गया।

नवाब और उसके बेटों का परलोक सिधारना था कि अवशिष्ट सेना ने हथियार डाल दिये। उनको बन्दी बना लिया गया। खजाने की चाबियाँ ली गईं और इस प्रकार खजाने से बहुत-सा सोना-चाँदी और रुपया हाथ लगा। सात हज़ार बीस बन्दूकें और नौ तोपें तथा सहस्त्रों तलवार आदि बहुत-सी युद्ध सामग्री भी इनके हाथ आई।

मुलतान विजय का समाचार महाराजा के पास लाहौर भेजा गया। यह सुनकर महाराजा ने प्रभु का धन्यवाद किया और फिर दूत

को स्वर्ण कंगन की जोड़ी, कण्ठाभरण और 500 रुपया आदि देकर उसको पुरस्कृत किया गया।

इस प्रकार न केवल मुजफ्फर खाँ विद्रोही का अन्त हुआ अपितु सदा-सदा के लिए मुलतान का काँटा उखाड़ फेंका गया। न मुजफ्फर खाँ बचा और न उसके वंश का कोई अन्य ही। धर्म के नाम पर युद्ध करनेवाले गाजियों को भी मुँह की खानी पड़ी।

कदाचित् इस बार भी मुसलमानों का खुदा हिन्दुओं के पक्ष में हो गया था। अन्यथा इतनी प्रबल सेना और इतनी प्रभूत सामग्री होने पर भी किस प्रकार उस सुदृढ़ दुर्ग पर हिन्दू सेना का अधिकार हो पाता और किस प्रकार नवाब के वंश की बेल को उखाड़कर फेंका जाता?

मुलतान विजय करनेवाली सेना जब लाहौर पहुँची तो महाराज ने प्रत्येक के सिर पर से रुपए वारे। क्योंकि इस युद्ध में भी हरिसिंह नलवा का निर्णायक भाग था, उसने असीम वीरता और साहस का परिचय दिया था, इस कारण उसको विशेष पुरस्कार के साथ-साथ उसकी जागीर दुगुनी करने की घोषणा की गई।

देवभूमि काश्मीर

काश्मीर को भारत का नन्दन-कानन कहा जाता रहा है। किन्तु वही काश्मीर जब अत्याचारियों के अधीन हुआ तो भारत का वह स्वर्ग नरक में बदल गया। काश्मीर जब अफगानों के अधिकार में आया तो वहाँ अन्याय और अत्याचार की पराकाष्ठा हो गई। किसी भी व्यक्ति का सिर काट लेना साधारण-सी बात हो गई थी। हिन्दुओं पर निर्मम अत्याचार होते थे। इन अत्याचारियों में असद खाँ तो नितान्त क्रूर था। वह दो हिन्दुओं की पीठ जोड़कर उनको बाँध देता और फिर उनको डल सरोवर के गहन जल में फेंकवा देता। जब वे

डूबने से बचने के लिए जोर-जोर से अपने हाथ-पैर मारते तो किश्ती पर बैठा वह अत्याचारी आनन्द से विभोर हुआ करता था।

उस काल में हिन्दू न तो अपने सिर पर पगड़ी बाँध सकते थे और न पैर में जूता डालकर चल ही सकते थे। इन अत्याचारियों द्वारा छोड़ी गई कुटनियाँ हिन्दुओं के घरों में घूमती-फिरती थीं और जिसकी भी बहू-बेटी को वे सुन्दर देखतीं उसे राजभवन में पहुँचा देतीं। काश्मीर के पण्डितों की बड़ी दुर्दशा होती थी। सर वाल्टर लॉरेंस ने अपनी पुस्तक 'वैली ऑफ काश्मीर' में तो यहाँ तक लिखा है कि सड़क पर यदि किसी मुसलमान को कोई काश्मीरी पण्डित चलता दिखाई देता तो वह उछलकर उसकी पीठ पर जा चढ़ता और अपने गन्तव्य तक उसको उसी प्रकार ले जाता।

ऐसी अवस्था में एक काश्मीरी पण्डित जिनका नाम राज काक था, अपने पुत्र के साथ किसी प्रकार वहाँ से भागने में सफल हो गया और उन्होंने लाहौर जाकर महाराजा रणजीतसिंह के सम्मुख अपना रोना रोया। उधर अजीम खाँ को जब यह सूचना मिली कि पण्डित लाहौर पहुँच गया है तो उसने पण्डित के घर को लूटने का आदेश दे दिया। पण्डित की पत्नी ने तो आत्महत्या करके आत्मरक्षा कर ली किन्तु उनकी नव-युवती पुत्रवधू इतना साहस नहीं कर सकी। उसे मुसलमान बनाकर काबुल भेज दिया गया।

इस परिस्थिति में 20 फरवरी 1819 को हिन्दू सेना ने काश्मीर की ओर कूच किया। वजीराबाद के निकट पहुँचकर सरदार हरिसिंह नलवा, सरदार फूलासिंह अकाली और राजकुमार गंगासिंह को काश्मीर पर चढ़ाई करने का आदेश हुआ। 1 मई 1819 को सर्वप्रथम हरिसिंह नलवा अपनी सेना के साथ राजौरी जा पहुँचा। उसने राजौरी के शासक अगर खाँ पर इतनी तीव्रता से धावा बोला कि उसे भागकर अपने प्राण बचाने के अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग ही नहीं सूझा। किन्तु

नलवा इतना असावधान नहीं था। उसने अगर खाँ को भागने नहीं दिया अपितु मार्ग में ही पकड़ लिया। उसे बन्दी बनाकर महाराज के पास भेज दिया गया।

नलवा आगे पुंछ की ओर बढ़ा। वहाँ का नवाब जबरदस्तखाँ बड़ी जबरदस्ती से लड़ा। नलवा की सेना ने उसके दुर्ग पर सुरंग लगाकर उसकी दीवार तोड़ उस पर आक्रमण किया। नवाब ने तब भागना चाहा किन्तु उसे भी पकड़ लिया गया। उसके बन्दी बनते ही उसकी सारी सेना का उत्साह टूट गया।

हिन्दू सेना का काश्मीर के अनेक स्थानों पर अधिकार हो गया था। सेना अभी बहिराम गले में विश्राम कर रही थी कि उसे विदित हुआ कि काश्मीर का नवाब मुहम्मद जबार खाँ विशाल सेना के साथ सीपियाँ के मैदान में मोर्चा डाले बैठा है। बस, फिर क्या था, हिन्दू सेना ने उधर ही कूच कर दिया और 3 जुलाई 1819 को उस पर आक्रमण कर दिया। दोनों ओर से घमासान युद्ध हुआ। दिन ढलने के समय दीवानचन्द मिश्र ने अपनी सेना को आगे बढ़ने का आदेश दिया किन्तु तभी जंगल की ओट से आकर शेरदिल खाँ ने उस पर आक्रमण कर दिया। हरिसिंह नलवा को इसकी सूचना मिली। उसने तनिक भी समय न गँवाते हुए पीछे से शेरदिल खाँ पर आक्रमण कर दिया। इस प्रकार अफगान सेना घेरे में आ गई। दोनों ओर से संगीनों और तलवारों से युद्ध होने लगा। फूलासिंह अकाली को जब इसकी सूचना मिली तो उसने भी एक ओर से आकर अफगानों पर आक्रमण कर दिया। इस युद्ध में शेरदिल खाँ, उसका भाई मीर आखारे समद खाँ तथा अन्य अनेक पठान मुखिया मार डाले गए।

तभी एक और विचित्र घटना घटित हुई। काश्मीर का शासक नवाब जबार खाँ सहसा हरिसिंह नलवा के सम्मुख आ उपस्थित हुआ। वह समझता था कि अपनी चमचमाती तलवार की धार वह

अनायास ही नलवा पर टिका देगा। किन्तु ज्योंही उसने अपना तलवार वाला हाथ ऊपर उठाया कि तत्क्षण नलवा ने अपनी कृपाण से उसका वह हाथ ही काटकर न केवल अपनी प्राण रक्षा की अपितु जबार खाँ को निहत्था और निश्शस्त्र कर दिया। जबार खाँ सिर के बल वहाँ से अपने प्राण लेकर किसी प्रकार भागने में सफल हो गया।

हरिसिंह नलवा के विषय में प्रसिद्ध है कि उसकी आँखों में एक विशेष प्रकार का सम्मोहन था। बड़े-बड़े योद्धा की भी जब उससे आँखें चार होती थीं तो वह डरकर भाग जाया करता था। सम्भवतया उसी सम्मोहन के वशीभूत जबार खाँ हत-प्रभ हुआ होगा और वह किसी प्रकार नलवा पर आक्रमण करने की सोचता कि उससे पूर्व उसका तलवार वाला हाथ ही काट डाला गया।

जबार खाँ का भागना था कि अफगानी सेना का साहस टूट गया। समर भूमि में अब उसको अपने पैर टिकाये रखना कठिन हो गया। जबार खाँ तो वहाँ से ऐसा भागा कि फिर वह कहीं टिका ही नहीं। सीमान्त की पर्वत की घाटियों में किसी प्रकार छिपता-छिपाता वह भागता-दौड़ता मुजफ्फराबाद के मार्ग से अफगानिस्तान जा पहुँचा। तब उसके भागने से सहज ही काश्मीर पर हिन्दू राज्य स्थापित हो गया। इस प्रकार इस्लामी शासन की आठ पीढ़ियाँ और पाँच सौ वर्ष अर्थात् सन् 1325 से 1819 के बाद काश्मीर में पुनः हिन्दू राज्य की स्थापना हो गई। इस युद्ध में बहुत-सी युद्ध सामग्री नलवा को मिली। विजय के उल्लास में तोपें दागी गईं और धौंसे बजाये गये।

4 जुलाई सन् 1819 को बड़ी सजधज के साथ हिन्दू सेना ने काश्मीर की राजधानी श्रीनगर में प्रवेश किया। नगर में डोंडी पिटवा दी गई कि किसी भी नागरिक को डरने की आवश्यकता नहीं है।

किसी को किसी प्रकार का कष्ट नहीं दिया जाएगा। सैनिकों को कड़ी आज्ञा दी गई कि वे किसी भी नागरिक पर किसी प्रकार की कुदृष्टि न डालें। सेना की ओर से किसी प्रकार का उत्पात न किये जाने की घोषणा किये जाने पर नागरिकों को ढाँढस बँधा और उन्होंने खुले हृदय से हिन्दू सेना का स्वागत किया।

काश्मीर विजय की खुशियाँ मनाई जा रही थीं कि तभी सरदार हरिसिंह नलवा और श्यामसिंह अटारी वाले ने मुजफ्फराबाद और दरबंद पर आक्रमण कर उसको भी काश्मीर में मिला दिया।

काश्मीर का सारा प्रबन्ध महाराज ने हरिसिंह नलवा को सौंप दिया। हरिसिंह ने वहाँ व्यवस्था स्थापित की और दीवान मोतीराम को वहाँ का प्रथम हिन्दू गवर्नर नियुक्त कर दिया।

काश्मीर विजय के उपरान्त जब हरिसिंह नलवा लाहौर वापस आया तो शाहदरा के पास बड़ी धूमधाम से महाराजा रणजीतसिंह ने उसका स्वागत किया। बहुत-सी सेना और बाजे-गाजे तथा राजकर्मचारियों के साथ महाराज स्वयं हाथी पर सवार होकर उसकी शोभायात्रा में सम्मिलित हुए।

लाहौर के बाजार खूब सजाये गये। सरदार हरिसिंह नलवा जब लाहौरी द्वार से नगर के भीतर प्रविष्ट हुआ तो नागरिकों ने मकानों की छतों पर से उस पर फूल बरसाये और केवड़ा छिड़का। इस प्रकार सरदार हरिसिंह नलवा महाराज के साथ लाहौर में प्रविष्ट हुआ।

उसके दूसरे दिन हजूरी बाग में एक बहुत बड़ा दरबार किया गया। काश्मीर युद्ध के समय वीरता दिखानेवाले सभी सैनिक अधिकारियों को उस दरबार में सम्मानित किया गया, उन्हें पारितोषिक दिये गये।

इस अवसर पर हरिसिंह नलवा को धन्नी प्रान्त जागीर में दिया गया।

नलवा गवर्नर के रूप में

काश्मीर राज्य को अफगानों से छीनकर जब भारत का अंग बनाया गया तो कुछ समय के लिए सरदार हरिसिंह नलवा वहाँ का प्रशासन सँभालने के लिए वहीं रह गये थे। महाराज की आज्ञा से उस समय उन्होंने स्वयं दीवान मोतीराम को काश्मीर का गवर्नर नियुक्त किया था। दीवान मोतीराम बहुत ही सज्जन पुरुष भले ही हों किन्तु उनमें प्रशासन करने की योग्यता नहीं थी। इसका परिणाम यह हुआ कि सारे राज्य में अव्यवस्था फैल गई।

महाराजा रणजीतसिंह को जब इस बात का ज्ञान हुआ तो उन्होंने दीवान देवीदास को इसकी जाँच करने के लिए भेजा। दीवान देवीदास ने काश्मीर में जाकर सब कुछ अपनी आँखों से देखा और फिर आकर महाराजा को बताया कि यदि शीघ्र ही काश्मीर पर किसी कठोर प्रशासक को नियुक्त न किया गया तो वहाँ विद्रोह फैलने की सम्भावना है। यदि एक बार विद्रोह ने सिर उठा लिया तो फिर उसको दबाना उतना सरल नहीं होगा।

महाराज ने इसके लिए सरदार हरिसिंह नलवा को उपयुक्त व्यक्ति समझा और उन्हें काश्मीर का गवर्नर नियुक्त कर श्रीनगर भेज दिया। तदनुसार 24 अगस्त 1820 को सरदार हरिसिंह श्रीनगर पहुँच गये और उन्होंने दीवान मोतीराम से वहाँ का कार्यभार सँभाल लिया। काश्मीरी जितने सरल होते हैं उतने ही झूठे भी। सर फ्रांसिस यंग हसबन्ड ने तो यहाँ तक लिख दिया है कि ''काश्मीरियों के वचन पर कभी भी विश्वास नहीं किया जा सकता।'' ऐसे लोगों पर प्रशासन करना बड़ा कठिन काम था। और फिर इससे पूर्व पाँच सौ वर्ष तक निरन्तर जिन पर विधर्मियों का अन्याय और अत्याचार भी होता रहा था। ऐसी स्थिति में उनका नैतिक स्तर गिर गया था तथा उनमें उच्च

गुणों का लोप हो गया था।

हरिसिंह नलवा ने वहाँ पहुँचने पर जब राजकोष की जाँच की तो पता चला कि वह तो बिलकुल खाली है। राज्य में राजस्व की प्राप्ति बिल्कुल बन्द हो चुकी थी। सेना को चार मास से वेतन नहीं मिला था। राज्य में बलवा हो जाना, परस्पर झगड़ पड़ना तथा कभी-कभी लूट-मार भी कर लेना, साधारण-सी बात हो गई थी। बहू-बेटियों की मान-मर्यादा भी संकट में पड़ने लगी थी।

सरदार हरिसिंह को जब इस सारी स्थिति का ज्ञान हुआ तो उसने सर्वत्र ढिंढोरा पिटवा दिया कि बड़े परिश्रम और बलिदान के बाद अफगानों से कश्मीर का राज्य लिया गया है और हम चाहते हैं कि इस राज्य में उन अत्याचारों की पुनरावृत्ति न हो जो अफगानों के समय में हुआ करती थी। किन्तु यह सब तभी सम्भव हो सकता है जबकि प्रजा इसमें प्रशासन की सहायता करे। प्रशासन चलाने के लिए धन की आवश्यकता होती है, धन राजस्व से प्राप्त होता है। किन्तु बहुत-से लोगों ने राजस्व ही नहीं चुकाया। अत: उन लोगों से प्रार्थना है कि वे तुरन्त राजस्व चुका दें। यदि इस घोषणा के बाद भी हमें विदित हुआ कि प्रजा हमसे सहयोग नहीं कर रही है तो फिर हमें कठोर पग उठाने के लिए बाध्य होना पड़ेगा। इसी प्रकार की एक लिखित आज्ञा भी प्रसारित कर दी गई।

इसका परिणाम यह हुआ कि अधिकांश कर-वंचकों ने अपना देय राजस्व राजकोष में जमा करा दिया। इस पर भी जो थोड़े सहज सीधे रास्ते पर नहीं आये उनके साथ ऐसा व्यवहार किया गया कि फिर कभी उनको विद्रोह करने का साहस ही नहीं हुआ। इतना ही नहीं, उनको देखकर शेष जन भी सहम गये। इस प्रकार वहाँ नलवा की धाक बैठ गई।

तो भी बारामूला के रईस और जेहलम नदी के दोनों किनारों पर

बसनेवाले 'खक्खै' और 'बब्बे' मुसलमान विद्रोह कर ही बैठे। इस घोषणा के बाद भी जब उन्होंने राजस्व नहीं दिया तो सरदार हरिसिंह नलवा ने उन्हें ऐसा पाठ पढ़ाया कि वे भी कान पकड़ गये। उनसे अगला-पिछला सारा राजस्व ले लिया गया और उन्हें इसके लिए दण्ड भी भुगतना पड़ा। उनके विद्रोही नेता राजा गुलामअली खाँ और जुल्फिकार खाँ के पाँवों में भारी-भारी बेड़ियाँ डालकर उन्हें महाराज के पास लाहौर भेज दिया गया।

इस प्रकार जब काश्मीर में शान्ति स्थापित हो गई तो सरदार हरिसिंह नलवा ने उचित समय पर प्रजा पर से राजकर को घटा दिया। अकबर के समय काश्मीर का राजस्व 15 लाख के लगभग था। अफगानों के समय में वह बढ़कर 60 लाख हो गया था। दीवान मोतीराम ने उसको 21 लाख रखा। सरदार हरिसिंह नलवा ने उसको भी घटाकर 13 लाख कर दिया। इससे प्रजा को राहत मिली और राजशासन चलाने में भी कठिनाई नहीं हुई।

बड़े प्राचीन काल से वहाँ की प्रजा से शासकों द्वारा बेगार ली जाती थी अर्थात् प्रजा से राज्य का कार्य बिना पारिश्रमिक दिये करवा लिया जाता था। सरदार हरिसिंह नलवा ने इस बेगार प्रथा को बिलकुल बन्द करवा दिया। पठानों के समय में शाल बुनने का जो कार्य सर्वथा बन्द हो चुका था नलवा ने उसको पुनः चालू करवाया। जन्म, सगाई और विवाह के अवसर पर काश्मीरियों से कर लेने की जो प्रथा थी हरिसिंह नलवा ने उसको भी बन्द कर दिया। उसने चरान लगान कम कर दिया, जिससे चरवाहों ने अपनी भेड़ों की संख्या बढ़ा ली। इस प्रकार ढीला पड़ता हुआ पशमीने का कारोबार भी पनपने लगा।

प्रबन्ध को ध्यान में रखते हुए नलवा ने स्थान-स्थान पर थाने बनवा दिये। मुकदमे में दोनों पक्षों को प्रमाण और साक्षी लेकर उपस्थित होने की आज्ञा दी जाने लगी और मुकदमा सुनते ही तुरन्त

निर्णय भी दे दिया जाता था। काश्मीर में कई प्रकार के नाप-तोल प्रचलित थे। इस कारण धोखा-धड़ी होती थी और परस्पर झगड़े भी। सरदार हरिसिंह नलवा ने उन सबको एक समान नाप-तोल रखने की आज्ञा प्रसारित कर दी।

हरिसिंह नलवा की मुद्रा

महाराजा रणजीतसिंह सरदार हरिसिंह नलवा के प्रबन्ध से इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने नलवा को काश्मीर में अपनी मुद्रा चलाने का अधिकार प्रदान कर दिया। किन्तु हरिसिंह ने उसे स्वीकार नहीं किया। तब महाराज ने उसको पुनः लिखा कि वे काश्मीर में अपना सिक्का अवश्य चलायें, इसी में उनकी प्रसन्नता है।

इसके बाद सरदार हरिसिंह ने काश्मीर में अपनी मुद्रा चलाई। उस रुपए के एक ओर फारसी लिपि में 'श्री अकाल सहाय' और सम्वत् लिखा हुआ होता था और दूसरी ओर 'हरिसिंह' और उसके नीचे 'एक रुपया।'

इस प्रकार जब उन्होंने काश्मीर में शासन को सुस्थापित कर लिया तो फिर उन्होंने राज्य में भ्रमण करना आरम्भ कर दिया। नलवा को यह जानकर आश्चर्य हुआ कि जहाँ कहीं भी उन्होंने कोई रमणीय स्थान देखा वहीं उनको पता चला कि वह कोई या तो पहले हिन्दू मन्दिर था अथवा कोई देव-स्थान। किन्तु अफगानों के राजत्व-काल में उस स्थान पर या तो कोई मस्जिद खड़ी कर दी गई थी या फिर कोई जियारतगाह। यहाँ तक कि सन् 179-181 में महाराजा नरेन्द्र द्वितीय द्वारा बनवाया गया नरेन्द्र स्वामी के मन्दिर को अफगान शासकों ने 'नरपीर की जियारतगाह' के रूप में परिणत कर दिया था।

इतना ही नहीं अपितु महा-श्री मन्दिर, जिसे महाराजा परिवारसेन द्वितीय ने बनवाया था, सन् 1404 में उसके प्रांगण में

काश्मीर के शासक शाह सिकन्दर की बेगम की कब्र बनवा दी गई। उस दिन से ही वह मन्दिर मकबरे के रूप में परिणत हो गया। काश्मीर का शासक जैनुल आबदीन को भी बाद में इसी स्थान पर दफनाया गया। यह स्थान 'मकबरा शाही' के नाम से प्रसिद्ध हो गया।

इसी प्रकार छठे पुल के निकट नदी के दाहिनी ओर स्कन्दगुप्त द्वारा बनवाए गये मन्दिर को मोहम्मद बाशू की जियारत का रूप दे दिया गया। उसके ही निकट सन् 684-693 में महाराजा चन्द्रापीड द्वारा बनाए गये त्रिभुवन स्वामी के मन्दिर पर एक मुसलमान पीर ने अत्याचार करके अधिकार कर लिया और उसे अपना स्मारक बनवा दिया। उसे 'टाँगा बाबा' कहते थे। मरणोपरान्त उसको वहीं दफना दिया गया। सन् 1404 में सिकन्दर ने जब वहाँ जामा मस्जिद बनवाई तो उसके निकट ही बने मन्दिर को तोड़कर उसकी सारी सामग्री को उस मस्जिद में लगवा दिया।

सुलेमान पर्वत की ऊँची चोटी पर महाराजा सिद्धिमान का बनवाया हुआ शंकराचार्य का एक बड़ा ही सुन्दर मन्दिर था। उसकी चौड़ी-चौड़ी सीढ़ियाँ वहाँ से आरम्भ होकर नीचे जेहलम नदी तक पहुँचती थीं। ये सीढ़ियाँ मूल्यवान् पत्थरों से बनी थीं। सन् 1623 में जब नूरजहाँ बेगम बादशाह जहाँगीर के साथ श्रीनगर आई तो उसने उन बहुमूल्य और सुन्दर पत्थरों को उन सीढ़ियों पर से उखड़वाकर श्रीनगर में अपनी स्मृति में एक 'पत्थरवाली मस्जिद' बनवा दी। इस प्रकार खोज करने पर नलवा को विदित हुआ कि काश्मीर की कोई मस्जिद, मकबरा, जियारतगाह ऐसी नहीं थी जोकि किसी मन्दिर अथवा अन्य देव-स्थान के स्थान पर न बनी हो और जिसमें उसकी सब सामग्री न लगी हो।

नलवा ने सोचा कि जब तक मुस्लिम अत्याचार और अन्याय के ये चिह्न विद्यमान हैं तब तक इस राज्य में हिन्दू-मुस्लिम प्रेम पनपना

कठिन है। क्योंकि हिन्दू जब-जब इनको देखेंगे तो उनके मन में एक प्रकार का उद्वेग-सा उत्पन्न होगा। यह केवल मुसलमानों के प्रति घृणा ही उपजायेगा। परिणामस्वरूप मिलन नहीं हो पायेगा, बैर बढ़ेगा।

नलवा सरकार ने सोचा कि क्यों न हिन्दुओं के मन्दिर हिन्दुओं को वापस दिलवा दिये जायँ और मुसलमानों के लिए भी मस्जिदों का प्रबन्ध करवा दिया जाय। इस दृष्टि से एक दिन हरिसिंह नलवा ने प्रतिष्ठित पण्डितों और मुखिया-मौलवियों की सभा बुलाई। सरदार नलवा को तब यह सुनकर और भी आश्चर्य हुआ जब उन पण्डितों ने मन्दिर तोड़कर बनाई गई मस्जिदों को उनके स्थान पर ही बने रहने का निवेदन किया। उनका कहना था कि उनको यदि हम अपने अधिकार में ले लेंगे तो मुसलमान उनके शत्रु बन जायेंगे और फिर वे उनका वहाँ रहना दूभर कर देंगे।

सरदार ने उनको समझाना चाहा कि वे तो यह सब बैर-विरोध सदा के लिए समाप्त कर देने के विचार से ही ऐसा कर रहे हैं। इस विषय में उन्होंने हिन्दू-मुसलमान दोनों को ही अनेक प्रकार के आश्वासन दिये किन्तु काश्मीरी हिन्दू उसे स्वीकार करने को तत्पर नहीं हुए। फिर सरदार ने धमकी दी कि धर्मस्थानों की रक्षा करना राज्य का कर्तव्य है, तब भी वे हिन्दू किसी प्रकार नहीं चेते। विवश सरदार हरिसिंह को भी अपना विचार भुलाना पड़ा।

पठानों का एक लज्जाजनक स्मारक अभी तक भी चला आ रहा था। उसके अनुसार हिन्दू लोग अपने सिर पर पगड़ी और पैर में जूता नहीं डाल सकते थे। जब कोई विद्वान् नंगे सिर और नंगे पाँव सरदार साहब से मिलने के लिए आता तो उनको इससे बड़ी ग्लानि होती थी और दुःख भी होता था। तब नलवा ने घोषणा करवा दी कि उनके राज्य में जो चाहे जैसा भी वस्त्र पहन सकता है, जूते डाल सकता है और घोड़े पर सवार हो सकता है। किसी को किसी प्रकार

की मनाही नहीं है। इस घोषणा के बाद ही हिन्दू पगड़ी बाँधने, जूता डालने और घोड़े पर सवारी करने लगे।

यद्यपि इस समय कश्मीर में मुसलमान बहुसंख्यक हैं और हिन्दू अल्पसंख्यक, परन्तु प्राचीन इतिहास से विदित होता है कि सन् 1400 से पहले समस्त काश्मीर हिन्दू राज्य था। वहाँ के हिन्दू और मुसलमानों के गोत्र और पारिवारिक नाम सप्रू, किचूल, पण्डित, बट्ट आदि जिस प्रकार हिन्दुओं में हैं उसी प्रकार मुसलमानों में भी हैं। काश्मीर के हिन्दुओं को किस प्रकार मुसलमान बनाया गया इसका हृदय-विदारक वर्णन हरगोपाल कौल द्वारा लिखित इतिहास 'तवारीख काश्मीर' में किया गया है।

नलवा को विदित हुआ कि बलात् मुसलमान बनाए गए अनेक हिन्दू परिवार पुन: हिन्दू बनना चाहते हैं किन्तु उनकी विरादरी उनको वापस लेने के लिए तैयार नहीं है। तब हरिसिंह ने ढिंढोरा पिटवा दिया कि "जो पतित पुन: अपने धर्म में आना चाहता है उसका स्वागत होना चाहिए, उसके लिए किसी प्रकार की भी रुकावट उत्पन्न न की जाय। यदि किसी विरादरी ने इस कार्य में बाधा उत्पन्न की तो उसको दण्ड दिया जाएगा।"

इसका परिणाम यह हुआ कि सहस्रों पण्डित जो किसी समय भय के कारण मुसलमान बन गये थे अथवा बना लिये गये थे, वे पुन: हिन्दू धर्म में मिला लिये गये। ऐसा अनुमान है कि उस समय लगभग 50 हजार मुसलमान पुन: हिन्दू धर्म में दीक्षित हुए थे।

सरदार हरिसिंह नलवा ने काश्मीर की खेतीबाड़ी और उद्योग को भी उन्नत करने की प्रेरणा दी। वहाँ सुख-शान्ति स्थापित की। हिन्दू-मुस्लिम प्रेम बढ़ाया। शिया-सुन्नी का विवाद समाप्त किया।

राजस्व यथा-सम्भव प्राप्त होने लगा। उद्योग-धन्धे उन्नति करने लगे। सैनिकों को नियत समय पर वेतन मिलने लगा। इस प्रकार

वहाँ पूर्णतया हिन्दू राज्य स्थापित हो गया तो फिर महाराजा रणजीतसिंह ने नलवा को किसी और महत्त्वपूर्ण स्थान पर नियुक्त करने के लिए वापस लाहौर बुलवा लिया।

काश्मीर से विदाई

जब महाराजा रणजीतसिंह को विदित हुआ कि काश्मीर में सब प्रकार से सुख-शान्ति है और वहाँ का शासन अब सुचारू रूप से चल रहा है तो उनको बड़ी प्रसन्नता हुई। हरिसिंह नलवा जैसा सेना-नायक उनको अन्य कोई नहीं मिला था और उस जैसा प्रशासक भी उनकी दृष्टि में कोई नहीं था। ऐसे व्यक्ति को अपने आधीन पाकर महाराजा रणजीतसिंह स्वयं को गौरवशाली समझते थे।

महाराज उनकी योग्यता का लाभ अब अन्यत्र उठाना चाहते थे। उनको विश्वास हो गया था कि सरदार हरिसिंह नलवा ने काश्मीर में वह सुव्यवस्था स्थापित कर दी है कि अब कोई भी वहाँ का शासन सरलता से चला सकता है। अतः उन्होंने उसी प्रकार का एक पत्र सरदार हरिसिंह को लिखा। उसमें उन्होंने नलवा पर असीम विश्वास व्यक्त करते हुए वापस आने के लिए लिखा, जिससे कि खालसा राज्य के अन्य अनेक महान् कार्य उनके द्वारा सम्पन्न किये जा सकें। यहाँ तक कि महाराज ने लिखा कि उन्हें सर्वाधिक प्रसन्नता तो उस दिन होगी जब सरदार हरिसिंह नलवा पेशावर और जलालाबाद आदि को जीतकर वहाँ पर भी काश्मीर जैसी सुख-शान्ति का साम्राज्य स्थापित कर देंगे। महाराजा ने लिखा कि उनकी इच्छा है कि अफगानों के बचे हुए प्रदेश मुंघेर एवं डेरा-इस्माइल खाँ आदि को जीतकर उन्हें खालसा राज्य में सम्मिलित कर लिया जाए। इस महान् कार्य में नलवा का महाराज के साथ होना नितान्त आवश्यक है।

उन्होंने हरिसिंह नलवा के स्थान पर दीवान मोतीराम को वहाँ

का गवर्नर नियुक्त कर भेज दिया। नलवा को लिख दिया कि महाराजा स्वयं लाहौर से पश्चिम की ओर कूच कर रहे हैं, इसलिए वे दीवान मोतीराम को वहाँ का प्रबन्ध सौंपकर उन्हें किसी पड़ाव पर ही मिल जाए। उन्होंने यह भी लिखा है कि यदि सम्भव हो तो नलवा उन्हें खुशाब के पड़ाव पर मिले जिससे कि अफगानों पर आक्रमण करने से पूर्व उनसे विचार-विमर्श किया जा सके।

सरदार हरिसिंह नलवा को पत्र मिला तो उन्होंने काश्मीर से कूच करने की तैयारी आरम्भ कर दी। विदा होने से पूर्व नलवा ने एक बहुत बड़ा दरबार किया, जिसमें उन्होंने समूचे प्रान्त के हिन्दू, सिख तथा मुसलमान मुखिया आमन्त्रित किये। उसमें उन्होंने उनके साथ बीते हुए दिनों का स्मरण कर उन्हें धन्यवाद दिया कि उन्होंने उनके साथ सहयोग किया जिसके कारण कश्मीर में सुप्रबन्ध हो सका और सुख-शान्ति स्थापित हुई। नलवा ने आशा व्यक्त की जिस प्रकार उन्होंने उनको सहयोग दिया है उसी प्रकार वे दीवान मोतीराम को भी सहयोग देंगे।

इसके उत्तर में बारी-बारी से सभी मुखियाओं ने नलवा का धन्यवाद किया, उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त की और उनको आश्वासन दिया कि वे भविष्य में दीवान मोतीराम को भी उसी प्रकार सहयोग देते रहेंगे जिस प्रकार कि उन्होंने उनको दिया था।

काश्मीर का उचित प्रबन्ध कर और वहाँ की बागडोर दीवान मोतीराम के हाथ में सौंपकर हरिसिंह नलवा ने 6 नवम्बर 1821 को अपनी सेना सहित वहाँ से प्रस्थान किया। काफी दूर तक वहाँ के निवासी नलवा को विदा करने के लिए आये। उस समय उन सबकी आँखों में प्रेम और विषाद के आँसू झलक रहे थे। नलवा का वहाँ से जाना उनके विषाद का कारण था। उनके प्रति उन सभी को प्रेम हो गया था।

इस प्रकार हरिसिंह नलवा काश्मीर से विदा होकर अपनी 7 हजार सेना लेकर मुजफ्फराबाद और गढ़ी हबीबुल्लाखाँ के मार्ग से पखली के क्षेत्र में पहुँचे तो उनको समाचार मिला कि हजारा प्रान्त के जदून और तनावली लगभग 30 हजार सेना एकत्रित कर उनका मार्ग रोकने के लिए खड़े हैं। उनका विचार मांगली की घाटी में उनके साथ घोर युद्ध करने का था। नलवा व्यर्थ के रक्तपात से बचना चाहते थे, इसलिए उन्होंने पहले उन गाजियों को समझाने का यत्न किया। उन्होंने अपने दो मुसलमान तथा एक सिख सहायक को जदूनों और तनावलियों को समझाने के लिए भेजा कि इस समय सरदार हरिसिंह केवल उस मार्ग से आगे जा रहे हैं उनका विचार किसी प्रकार का आक्रमण करने का नहीं है।

जदून विशिष्ट स्वभाव के प्राणी थे। उनसे यदि कोई नम्रता का व्यवहार करता तो वे समझते कि अवश्य ही वह दुर्बल होगा इसलिए नम्रता का व्यवहार कर रहा है। इसलिए वे उसे दुर्बल जान उसकी बात स्वीकार नहीं करते। और यदि कोई उनके साथ बल प्रयोग करे तो वे तुरन्त उसकी अधीनता स्वीकार कर लेते। यही कारण है कि नलवा के दूत निराश होकर वापस लौट आए।

तभी एक घटना घटी। सहसा आकाश पर बादल छाए और फिर मूसलाधार वर्षा भी हो गई। आधा घण्टा बरसने के बाद फिर आकाश निर्मल हो गया और धूप छिटक गई। नलवा ने देखा कि मांगली के सभी निवासी मांगलियाँ लेकर अपनी छतों को कूट रहे हैं। तब सरदार को पता चला कि वहाँ की मिट्‌टी ही कुछ ऐसी है कि बिना कूटे ठीक प्रकार से बैठती ही नहीं। सरदार की समझ में आ गया कि यहाँ की मिट्‌टी ही कूटनी नहीं है अपितु यहाँ के निवासी भी कूटे बिना ठीक प्रकार से नहीं बैठते। उन्होंने अपने नायकों से कहा, ''यहाँ की मिट्टी का नाम 'कूटनी मिट्‌टी' है। इसी प्रकार यहाँ

के निवासी भी उसी प्रकार कूटकर ही ठीक किये जा सकते हैं।"

बस फिर क्या था। उन पर सहसा धावा बोल दिया गया। दोनों ओर से घमासान युद्ध हुआ। हरिसिंह का एक सरदार मेघसिंह क्या इस युद्ध में मारा गया, अन्यथा पहर-डेढ़ पहर में हिन्दू सेना ने दो हजार गाजियों को यमपुर भेज दिया। जदूनों की यह दशा देखकर तनावली और तरीने पठानों का साहस भंग हो गया। उनमें भगदड़ मच गई। तब तक अँधेरा भी हो गया था। उस अन्धकार ने उन गाजियों को भागने में सहायता पहुँचाई। मांगली पर सरदार हरिसिंह नलवा का अधिकार हो गया, लूट में बहुत-सी युद्ध सामग्री, अन्न, गायें, भैंसे, बैल आदि उनके हाथ आए।

एक दिन पहले अकड़कर बात करने वाले और लड़ने-मारने के लिए तैयार जदून और तनावली दूसरे दिन हाथों में सफेद झंडे लिये हुए सिर से नंगे अतिदीनता के साथ अपनी करनी पर पश्चात्ताप करते हुए सरदार हरिसिंह की सेवा में उपस्थित होकर अपने प्राणों की भीख माँगने लगे। सरदार ने उन पर कुछ दण्ड निर्धारित किया।

युद्ध में मारे गए अपने वीर सैनिकों का दाह-संस्कार कर उनकी स्मृति में वहाँ एक चिह्न बनवाया और मांगली पर अपना प्रशासक नियुक्त कर उन्होंने 14 नवम्बर 1821 को वहाँ से प्रस्थान किया। 28 नवम्बर को वे खुशाब के पड़ाव पर महाराजा रणजीतसिंह से आ मिले।

महाराजा को मांगली विजय का समाचार पहले ही मिल गया था। अत: हरिसिंह नलवा के पड़ाव पर पहुँचने पर तोपों से उनको सलामी दिलवाई गई। महाराज इतने प्रसन्न थे कि उन्होंने नलवा को अपने सीने से लगाकर कहा, मेरा वीर सेनापति खालसा के नाम को संसार में सूर्य के समान उज्ज्वल कर रहा है।

नलवा राजकोष में देने के लिए दो लाख रुपये काश्मीर से लाए

थे। महाराज ने वहीं पर एक दरबार किया और वह सारा रुपया तथा हजारा का नया जीता हुआ प्रदेश पारितोषिक रूप में नलवा की भेंट कर दिया।

नलवा की मुंघेर पर विजय

मुंघेर प्रान्त अटक नदी की दाहिनी ओर दूर-दूर तक फैला हुआ था। उसका वार्षिक राजस्व 10 लाख रुपया था। जिस समय नलवा ने मुंघेर पर चढ़ाई की उस समय वहाँ का शासक हाफिज अहमद खाँ था। अपने समय का वह बहुत ही कुशल योद्धा और घुड़सवार माना जाता था। मुंघेर तब अफगान राज्य का एक प्रदेश था। वह प्रदेश बड़ा रेतीला होने के कारण वहाँ पानी की भारी कमी थी। यही उस प्रान्त को जीतने में कठिनाई भी थी। जहाँ-जहाँ पानी के प्राकृतिक झरने थे, वहाँ-वहाँ नवाब ने दुर्ग बनवा दिये थे, इस प्रकार पानी का स्रोत घिर गया था जो किसी भी आक्रमणकारी को बिना दुर्ग पर अधिकार किये नहीं मिल सकता था। अत्यधिक गर्मी और पानी का अभाव किसी आक्रमणकारी का साहस तोड़ने के लिए ये पर्याप्त कारण थे।

नवाब के पास उस समय 25 हजार सेना थी। महाराजा ने सरदार हरिसिंह नलवा से विचार-विमर्श किया और फिर अपनी सेना को इस प्रकार विभक्त किया—सरदार दलसिंह और खुशहालसिंह को 8 हजार सेना के साथ डेरा इस्माइल खाँ की ओर के दुर्गों पर आक्रमण करने को नियत किया, जरनेल दीवानचन्द और कृपाराम को 10 हजार सेना के साथ खानगढ़ और मौजगढ़ पर आक्रमण करने का आदेश हुआ, सरदार हरिसिंह अपनी 7 हजार सेना लेकर मुंघेर और उसके मार्ग पर पड़ने वाले दुर्गों पर आक्रमण करने के लिए तैयार हुए।

तीन दिन के कड़े परिश्रम के बाद संग्राम करते हुए मार्ग के 7 दुर्गों पर अधिकार कर लिया। चौथे दिन प्रातःकाल से पूर्व ही उन्होंने मुंघेर पर आक्रमण भी कर दिया।

हाफिज अहमद खाँ यद्यपि असावधान नहीं था किन्तु तदपि वह नहीं समझता था कि उस दिन प्रातःकाल उस पर आक्रमण कर दिया जाएगा। किन्तु आक्रमण होने पर पठान लोग बड़ी वीरता और उल्लास के साथ मैदान में उतर आए। बस फिर क्या था, तलवार से तलवार बजने लगी। घमासान युद्ध आरम्भ हो गया। इस प्रकार चार दिन तक निरन्तर मुंघेर दुर्ग के लिए घमासान युद्ध होता रहा। पाँचवें दिन स्थिति बदल गई। उस दिन हिन्दू सेना ने दुर्ग की दीवार को तोपों से उड़ाकर नगर में प्रविष्ट हो उस पर अपना अधिकार कर लिया।

नगर पर अधिकार होते ही दुर्ग पर अधिकार की बारी थी। दुर्ग पर घेरा डाल दिया गया। दोनों ओर से गोले और गोलियों की बौछार होने लगी। नवाब के सैनिकों ने नगर के युद्ध में हिन्दू सेना का युद्ध-कौशल देख लिया था। पठानों के हृदय में उनका दबदबा बैठ गया। उसका परिणाम यह हुआ कि नवाब के सैनिकों ने उसका साथ छोड़कर प्राण-रक्षा के लिए भागना आरम्भ कर दिया।

19 दिसम्बर 1921 को प्रातःकाल ही सरदार हरिसिंह नलवा ने दुर्ग के पश्चिमी द्वार पर के सामने अपनी तोपें अड़ा दीं। उसका परिणाम यह हुआ कि दिन ढलने से पूर्व ही दुर्ग का वह भाग धराशायी हो गया। बस फिर क्या था सरदार हरिसिंह अपने सैनिकों के साथ दुर्ग में घुस गये। उस समय नवाब के पास वहाँ पर पाँच सहस्त्र सेना थी। उसने बड़ी वीरता के साथ नलवा का सामना किया। किन्तु नलवा की सेना के सामने उनका उत्साह ठंडा पड़ गया। नवाब के पाँव उखड़ गए और वह अन्तःपुर में जाकर छिप गया। नलवा ने

आज्ञा प्रसारित कर दी कि अन्त:पुर पर किसी प्रकार भी आक्रमण न किया जाय। अन्त:पुर पर कड़ा पहरा लगा दिया गया और शेष दुर्ग पर अधिकार कर लिया गया।

नवाब को अब अपने बचाव का कोई मार्ग नहीं दिखाई दिया। सेना पहले ही भाग गई थी। तब उसने अपने दो विश्वस्त कर्मचारी काजी गुलमोहम्मद और आलीजह सिकन्दर खाँ को हरिसिंह नलवा के पास भेजकर कहलवाया कि 'उसको अपनी करनी का फल मिल चुका है, वह पश्चात्ताप कर रहा है, इसलिए उसे प्राणदान दिया जाय और साथ ही उसे अपनी बेगमों के साथ यहाँ से सकुशल निकल जाने दिया जाय।' सरदार हरिसिंह ने उसकी प्रार्थना को स्वीकार कर लिया और अपने विश्वस्त सैनिकों द्वारा नवाब को उसके सम्बन्धियों के साथ महाराज के पास भिजवा दिया, जिससे कि शेष निर्णय वे स्वयं कर सकें।

नवाब जब महाराज के पास पहुँचकर गिड़गिड़ाया तो महाराज ने उसको क्षमा कर दिया और उसको निर्वाह के लिए डेरा इस्माइल खाँ में एक बड़ी जागीर भी दे दी।

मुंघेर के दुर्ग में हिन्दू सेना को बहुत सारी युद्ध सामग्री प्राप्त हुई। मुंघेर पर अधिकार होने के बाद वहाँ की पानी की कठिनाई को देखते हुए सरदार हरिसिंह नलवा ने उस प्रान्त में विभिन्न स्थानों पर 20 कुएँ खुदवाये। सभी कुओं का पानी बहुत मीठा था। सरदार अमरसिंह सिद्धावालिया को वहाँ का गर्वनर नियुक्त कर हरिसिंह नलवा को साथ लेकर महाराज 27 जनवरी 1822 को लाहौर भी पहुँच गए।

इस राजसी दल ने लाहौर पहुँचकर साँस लिया ही था कि तभी समाचार मिला कि हजारे में विद्रोह हो गया है। तत्काल जरनल दीवानचन्द और कृपाराम को हजारा की ओर भेज दिया गया जिससे कि वे विद्रोहियों को उनकी करनी का फल चखाएँ। महाराज चाहते

थे कि किसी प्रकार पेशावर पर उनका अधिकार हो जाए। किन्तु जब तक हजारा का विद्रोह शान्त न हो जाय तब तक यह कार्य सम्भव नहीं था। मुजफ्फर खाँ की ही भाँति हजारे वाले हिन्दू सेना से पराजित होने पर शान्त हो जाते और फिर तुरन्त ही विद्रोह कर बैठते थे। महाराज समझ रहे थे कि जब तक कोई कुशल व्यक्ति उन पर शासन करने के लिए न भेजा जाएगा तब तक यह विद्रोह भड़कता ही रहेगा। उनकी दृष्टि सरदार हरिसिंह नलवा पर ही टिकी। उन्होंने उनको वहाँ का गवर्नर बनाकर भेज दिया। और सरदार नलवा 27 फरवरी 1822 को सालेह के क्षेत्र में जा पहुँचे।

हजारा पर नलवा की विजय

हजारा प्रान्त बड़ा हरा-भरा और सुन्दर है। तैमूर जब भारत से लौट रहा था तो इस स्थान की प्राकृतिक शोभा को देखकर उस पर मुग्ध हो गया। उसने उसको छोड़ना नहीं चाहा, अतः उसने वह प्रान्त अपने तुर्की सरदारों को जागीर में दे दिया था। तुर्की सरदारों ने उसकी देखरेख के लिए एक पटल-रखी जिसमें एक हजार सैनिक थे। तब से उनका नाम हजारा पड़ गया अर्थात् वह प्रदेश जिसकी रक्षा के लिए एक हजार सैनिक तैनात किये गये थे। उसका वास्तविक नाम उर्ग था। किन्तु तब से वह हजारा ही कहा जाने लगा था।

जैसा कि हम कह आए हैं कि हजारा में बार-बार विद्रोह उठता था। 1818 में जब विद्रोह हुआ तो वहाँ रावलपिण्डी के शासक सरदार मक्खनसिंह को भेजा गया था। उन्होंने विद्रोह दबा दिया था। किन्तु एक वर्ष बाद जब वह पुनः हजारा गया तो वहाँ के शासक ने उसके साथ दोहरी चाल चली। ऊपर से तो उसके साथ नम्रता का व्यवहार करते रहे, उससे क्षमायाचना करते रहे किन्तु जब रात को वह सोया हुआ था तो पठानों की सेना ने उस पर आक्रमण कर दिया।

मक्खनसिंह ने सामना किया और पठानों को भागने के लिए विवश कर दिया। तो भी भागते हुए किसी पठान ने मक्खनसिंह को भी मौत के घाट उतार दिया।

इस दुर्घटना का समाचार जब अटक के किलेदार सरदार हुकमासिंह चिमनी को मिला तो वह तुरन्त वहाँ पहुँच गया और उसने सुलतानपुर आदि उन गाँवों पर घेरा डाल दिया जहाँ मक्खनसिंह के हत्यारे के सम्बन्धी रहते थे और स्वयं हत्यारा जहाँ छिप गया था। चिमनी सरदार ने वहाँ ऐसा रक्तपात किया कि जिसमें न केवल मक्खनसिंह का हत्यारा अपितु उसके सभी सम्बन्धी भी मार डाले गए।

इसी प्रकार सन् 1820 में महाराजा ने राजकुमार शेरसिंह आदि को हजारा भेजा था। वहाँ पहुँचकर उन्होंने मैदानी क्षेत्र पर तो अधिकार कर लिया था किन्तु पहाड़ी प्रदेश को जीतने में कुछ कठिनाई हुई थी। वह भी उन्होंने जीत तो लिया था किन्तु उस युद्ध में उनका विश्वस्त नायक रामदयाल मारा गया था। उसका बदला लेने के लिए गंघागर पर्वत क्षेत्र के निवासियों को गोली से भून डाला गया। पठान त्राहि-त्राहि कर उठे। उन्होंने क्षमायाचना की और दण्ड आदि का भगुतान कर अपने प्राण बचाए थे।

उस समय सरदार अमरसिंह मजीठिया को उस प्रान्त का शासक नियुक्त किया गया था। तब करालों के मुखिया हसनअली खाँ ने विद्रोह किया था। मजीठिया ने उसको परास्त तो कर दिया किन्तु लौटते हुए उनकी सेना समुन्दकसी नाले में विश्राम कर रही थी कि पठानों के कुछ छिपे हुए सैनिकों ने उन पर धावा बोल दिया। सरदार अमरसिंह ने उनकी खूब खबर ली और उनको बन्दी बना लिया। तभी उन बन्दियों में से एक ने अवसर पाकर सरदार पर खंजर का प्रहार किया जिससे वे परलोक सिधार गये। इस प्रकार उस प्रान्त में निरन्तर विद्रोह भड़कता रहता था।

तब महाराजा की आज्ञा से सरदार हरिसिंह नलवा 26 फरवरी 1822 को अपनी सेना सहित हजारा जा पहुँचे। जाते ही उन्होंने पहले सरदार अमरसिंह को धोखे से मारनेवाले कबीले के लोगों को दण्डित किया। एक दिन अकस्मात् ही नलवा हाशम खाँ कराल के प्रदेश पर टूट पड़े। सरदार ने उसको पकड़वाकर उसकी मुश्कें बंधवा दीं, गाँव को आग लगाकर राख कर दिया। जिस समय उसको हरिसिंह के प्रमुख प्रस्तुत किया गया उस समय वह भय से थर-थर काँप रहा था। उसको कहा गया कि या तो वह अमरसिंह के हत्यारों को उनके सुपुर्द कर दे अन्यथा उसको भी तोप से उड़ा दिया जाएगा। हाशम खाँ ने प्राणों की भिक्षा माँगी और वचन दिया कि वह हत्यारों को उनके हवाले कर देगा। जब उन हत्यारों को नलवा के सम्मुख प्रस्तुत किया तो उनको तोप से उड़ा देने का आदेश दिया गया।

हरिपुर दुर्ग का निर्माण

हजारा प्रान्त के निवासी बड़े युद्ध-प्रिय थे। उन पर शासन करना सरल कार्य नहीं था। उस समय हरिसिंह नलवा ने यही उपयुक्त समझा कि उनकी सम्मिलित भूमि पर एक सुदृढ़ दुर्ग बनाया जाय। दुर्ग बनवा दिया गया। सरदार तथा अन्यान्य नायकों ने सुझाव दिया कि उस दुर्ग का नाम सरदार हरिसिंह नलवा के नाम पर हरिपुर रखा जाय। तदनुसार उसका नाम हरिपुर रखा गया। भारत विभाजन के समय तक वह दुर्ग नलवा के स्मारक के रूप में उस स्थान पर विद्यमान था। दुर्ग तो अभी भी विद्यमान है, किन्तु उसका नाम अब हरिपुर किस प्रकार रह सकता है।

उस दुर्ग के निकट एक नगर भी बसाया गया था। उस नगर के चारों ओर एक सुदृढ़ दीवार बनाई गई। उसकी चार दिशाओं पर चार द्वार बनाए गये। उस प्रान्त में जल का कष्ट रहता था। उसके निवारण

के लिए निकट की नदी, जिसका नाम दोड़ था, से एक नहर काटकर लाई गई। नगर निवासियों की पूजा-अर्चना के लिए नलवा ने वहाँ एक मन्दिर, एक गुरुद्वारा और एक मस्जिद बनवा दी। जब पानी का सुप्रबन्ध हो गया तो नगर के चारों ओर उद्यान और पुष्प- वाटिकाएँ लग गईं।

इस प्रकार मैदानी प्रदेश पर जब सब प्रकार से सुख-शान्ति हो गई तो अब नलवा का ध्यान पर्वतीय क्षेत्र की ओर गया। इस प्रदेश में जदून, तिनावली और सोवाती लोग बसते थे। एक वर्ष पूर्व ये सब सरदार नलवा से करारी मात खा चुके थे। नलवा की शक्ति को जानते थे। इसलिए उनको वश में करने में अधिक कठिनाई नहीं हुई। न अधिक रक्तपात ही करना पड़ा। उस पहाड़ी प्रदेश पर भी आवश्यक-आवश्यक स्थानों पर दुर्ग बनवा दिये गए और उनमें सेना रख दी गई। सेना के आवागमन की सुविधा के लिए सड़कें बनवाई गईं। इस प्रकार उस सम्पूर्ण हजारा प्रान्त में पूर्ण शान्ति स्थापित हो गई।

अबलाओं का उद्धार

नलवा जिन दिनों हरिपुर दुर्ग बनवा रहे थे और हरिपुर नगर बसा रहे थे उन्हें महाराजा का सन्देश मिला कि डेरा इस्माइल खाँ और डेरा गाजी खाँ के शासक राजस्व नहीं दे रहे हैं, अतः उनसे राजस्व प्राप्त करने के लिए वे जावें। नलवा अपने सुपुत्र गुरुदत्तसिंह को किलेदार बनाकर और हर्षसिंह को उसका सहायक बनाकर स्वयं डेरों की ओर कूच कर गए।

मोहम्मद खाँ, जो कुछ ही समय पूर्व हरिसिंह नलवा से क्षमायाचना कर अपने निर्वाह के लिए जागीर प्राप्त कर चुका था, अवसर पाकर विद्रोह कर उठा। उसने दुर्ग के गिर्द घेरा डाल दिया। हरिसिंह हर्षसिंह ने उसको दुर्ग के निकट भी नहीं फटकने दिया। हरिसिंह

नलवा की अनुपस्थिति में मोहम्मद खाँ से प्रेरणा पाकर सारा प्रदेश विद्रोह कर उठा। लाहौर दरबार को जब इसकी सूचना मिली तो वहाँ से बुधसिंह संधांवालिये को भेजा गया। किन्तु उसको पहुँचने में विलम्ब हो गया।

जहाँ-जहाँ हिन्दू बसते थे अफगान उनको लूटने लगे। उनके बच्चों को पकड़कर ले गये। उधर नलवा को जब इसकी सूचना मिली तो उन्होंने भी उस ओर मुख किया। हजारा पहुँचकर उनको विदित हुआ कि नवांशहर के पास मुसलमान घेरा डाले पड़े हैं। नलवा ने हरसासिंह अकाली और बुधसिंह संधांवालिये को नवांशहर की ओर भेजा। तब तक वहाँ 30 हजार अफगान एकत्रित हो गये थे और स्थानीय मुसलमान भी धर्म के नाम पर उनका साथ देने लगे थे। यह सुनकर स्वयं नलवा भी उसी ओर प्रस्थान कर गये। उनके आने का समाचार मिलते ही जहाँ हिन्दू सेना का उत्साह बढ़ गया वहाँ अफगान और पठान सेना का उत्साह ठंडा पड़ने लगा।

नलवा बिजली की भाँति अफगान सेना पर टूट पड़े। इस प्रकार कई हजार पठान तो युद्धस्थल पर ही मारे गये और जो शेष बचे वे सब एक बहुत बड़ी मस्जिद में जाकर छिप गये। उस मस्जिद को आग लगा दी गई। जो वहाँ से बचकर भागने का यत्न करने लगे उन्हें तलवार के घाट उतार दिया गया। मस्जिद को आग लगाने का बहुत अच्छा परिणाम हुआ। अफगान लोग इसलिए धर्मयुद्ध किया करते थे कि काफिरों के साथ लड़ने से उन्हें स्वर्ग मिलेगा और इस प्रकार वे नरक की आग से बच जाएँगे। किन्तु जब उन्होंने स्वयं को इसी धरती पर भयंकर आग में जलते पाया तो फिर जेहाद करना बन्द कर दिया और शान्ति से रहने लगे।

हरिसिंह नलवा को विदित हुआ कि पठानों तथा अफगानों ने जिन हिन्दू अबलओं को पकड़ लिया था वे अभी जीवित हैं।

अबलाओं का पकड़ा जाना सुन नलवा के नेत्र क्रोध से लाल हो गये थे। तभी उन्हें पता चला कि पखली और अंगरोर के पास बहुत-से पठान एकत्रित हो रहे हैं। नलवा ने जाकर अंगरोर को घेर लिया। छोटा-सा संग्राम हुआ। पठान पराजित हुए। नलवा ने पठानों की एक सहस्र महिलाएँ पकड़ लीं। फिर उन्होंने शनकियारी पहुँचने पर घोषणा कर दी कि एक हिन्दू महिला के बदले में एक पठान महिला छोड़ी जाएगी। मुसलमानों को सभी पकड़ी हुई हिन्दू महिलाएँ और बच्चे छोड़ने पड़े। तब नलवा ने भी पठान महिलाओं को मुक्त कर दिया। स्त्री के प्रति उनके मन में बहुत सम्मान था। उन्होंने कभी किसी शत्रु की महिला को बुरी दृष्टि से नहीं देखा और यही शिक्षा उन्होंने अपने सैनिकों को दी हुई थी।

एक दिन नलवा नगर से दूर जंगल में डेरा डाले पड़े थे। साँझ का समय था। हरिकीर्तन हो रहा था। तभी उस क्षेत्र के एक युवक ने आकर सूचना दी कि कल जब वह अपनी नव-विवाहिता पत्नी का डोला लेकर आ रहा था कि मिचनी के खान के कुछ सिपाहियों ने उसे घेर लिया और बलात् उसकी पत्नी को उससे छीनकर ले गये। वह युवक मिचनी के खान के पास गया, उससे प्रार्थना की किन्तु उसने उसकी पत्नी को लौटाना तो दूर अपितु उसको ही साथियों सहित बन्दी बना लिया। किसी प्रकार पहरेदार को फुसलाकर वह युवक बाहर निकलकर आया और फिर नलवा की शरण में पहुँचा है।

नलवा ने जब यह व्यथा-कथा सुनी तो क्रोध से उनके नथुने फड़फड़ाने लगे। रात्रि को भोजन समाप्त होते ही हरिसिंह नलवा ने सरदार महासिंह को आदेश दिया कि समूची सेना अभी यहाँ से कूच करे और सवेरे फिर यहीं आकर भोजन करे। अर्थात् रातोंरात मिचनी को मींच दिया जाए। यद्यपि उस समय नलवा के पास सौ से अधिक

सेना नहीं थी किन्तु मिचनी के खान के लिए इतने ही पर्याप्त थे। नलवा ने मिचनी पहुँचकर अपना एक दूत खान के पास भेजकर कहलवाया कि वह तुरन्त उस युवक की पत्नी को उसको सौंप दे।

नलवा का आगमन सुनकर एक बार तो पठान काँप गया। किन्तु फिर उसका पठानी रक्त खोलने लगा। उसने उस अबला को मुक्त करना अपना अपमान समझा। वह पाँच सौ सैनिक लेकर लड़ने के लिए बाहर निकल आया। घोर युद्ध हुआ किन्तु अन्ततः सौ सैनिकों ने पाँच सौ पठानों को परलोक पठा दिया। तब स्वयं पठान नलवा से युद्ध करने के लिए आया। पठान बोला, ''दो सहायक अपने और बुला लो। क्योंकि हमारा धर्म कहता है कि एक मौमिन तीन काफिरों से लड़े। इसलिए हम तुमसे अकेले नहीं लड़ेंगे।''

नलवा ने उत्तर दिया, ''तुम्हारा धर्म तो तीन के साथ लड़ने को कहता है किन्तु हमारे गुरु तो सवा लाख से एक को लड़ने के लिए कह गये हैं, इसलिए सामने आ जाओ हठ मत करो।''

इस प्रकार दोनों में युद्ध हुआ। नलवा ने पहले उसको दो बार प्रहार करने का अवसर दिया और उसके प्रहार को निरस्त कर फिर स्वयं उस पर प्रहार कर उसको उसी क्षण यमलोक भेज दिया। खान का दुर्ग ढा दिया गया और उस युवक की पत्नी को उसे सौंप दिया गया।

अटक में नलवा की धाक

सन् 1823 के आरम्भ में ही महाराजा रणजीतसिंह ने सरदार हरिसिंह नलवा को लाहौर बुलवाकर उनको काबुल से प्राप्त की गई गुप्त सूचनाएँ दिखाईं। उनमें लिखा था कि मुहम्मद अजीम खाँ बारकजाई सिक्खों से एक निर्णायक युद्ध लड़ना चाहता है। तब हरिसिंह ने सुझाव दिया कि हमको बारकजाई के आने की प्रतीक्षा करने की भी आवश्यकता नहीं है, हमें उससे पहले ही अपनी तैयारी

कर लेनी चाहिए।

इस निश्चय के अनुसार महाराजा ने हरिसिंह को परामर्श दिया कि वे आवश्यकतानुसार कुछ सेना तो हजारा में छोड़ दें और शेष सेना लेकर अटक पहुँच जाएँ। हरिसिंह ने महाराजा को यह भी परामर्श दिया कि इस अवसर पर उन्हें फूलासिंह अकाली को भी सहायता के लिए बुला लेना चाहिए।

इस प्रकार सारी व्यवस्था करके हरिसिंह नलवा हजारा पहुँच गए। हजारा की सारी व्यवस्था ठीक करके और वहाँ पर आवश्यक सेना तैनात कर शेष सेना को लेकर वे फरवरी सन् 1823 में अटक पहुँच गए।

अटक पहुँचने पर जो पहला कार्य हरिसिंह नलवा ने किया वह था बहुत सी नाव एकत्रित कर वहाँ अटक नदी का पुल ठीक करवाना। हरिपुर और हजारा के साहूकारों को उन्होंने अनाज के ठेके दे दिये जिससे कि यथासम्भव शीघ्र ही उनके सारे भण्डार भर जाएँ।

उधर मुहम्मद अजीम खाँ बारकजाई भी इस बार हिन्दुओं से निर्णायक युद्ध करने के लिए तुला बैठा था। उसका तो विचार था कि इस बार वह हिन्दू सेना को पंजाब तक धकेल देगा और सदा-सदा के लिए मुलतान, काश्मीर, अटक, मुंघेर और हजारा को अपने अधिकार में कर लेगा। इस विचार से वह भी काबुल से चलकर पेशावर आ पहुँचा। उन दिनों अजीम खाँ का छोटा भाई यार मोहम्मद खाँ बारकजाई पेशावर का शासक था और वह महाराजा रणजीतसिंह को कर दिया करता था। अजीम खाँ खैबर दर्रे से पेशावर की ओर बढ़ा ही था कि उसको बताया गया कि पेशावर उसके लिए खाली पड़ा है। इसलिए वह बिना रोक-टोक 12 फरवरी 1823 को पेशावर में प्रविष्ट हो गया।

यार मोहम्मद खाँ ने एक लम्बा-चौड़ा पत्र लिखा और अपने

दीवान मणिकराय कन्धारी के हाथ उसने वह पत्र महाराजा रणजीतसिंह के पास भिजवा दिया। उसने लिखा कि अजीम खाँ की इतनी बड़ी सेना से टक्कर लेने में असमर्थ होने के कारण उसने पेशावर खाली कर दिया है। दूसरी ओर पेशावर पहुँचते ही अजीम खाँ ने सारे इस्लामी प्रदेश में मौलवी और गाजी भेजकर हिन्दू सेना के प्रति रोष का वातावरण करवा दिया। उसका परिणाम यह हुआ कि धर्मयुद्ध करनेवाले गाजी मुसलमान दल बना-बनाकर जेहादी झण्डे के नीचे आने आरम्भ हो गये।

यह गाजी दल जब बहुत बढ़ गया तो इसके रहने के लिए तथा युद्ध के लिए भी नौशहरा क्षेत्र उपयुक्त समझा गया क्योंकि वहाँ पीने के लिए काबुल नदी का जल पर्याप्त था, रहने के लिए क्षेत्र भी बहुत विस्तीर्ण था और लड़ने के लिए पहाड़ों की ओट थी। लगभग 45 हजार गाजी धर्मयुद्ध के नाम पर अजीम खाँ ने एकत्रित कर लिये थे। उसने अपने भतीजे मोहम्मद जमान खाँ और खबास खाँ को बहुत-से गाजियों के साथ यह कहकर आगे भेज दिया कि वह हिन्दू सेना को अटक के पास ही रोक दे।

सरदार हरिसिंह और राजकुमार शेरसिंह ने जब यह देखा तो अपनी सेना को अटक के पार भेजकर उन गाजियों को पीछे हटाना आरम्भ कर दिया। हिन्दू सेना से पठानों की सेना की संख्या लगभग चौगुनी थी। इसलिए गाजियों से वह मैदान खाली कराना इतना सहज नहीं था। मोहम्मद जमान खाँ ने किसी प्रकार साहस का परिचय दिया और वह अपनी सेना लेकर पुल तक पहुँच ही गया। वहाँ पहुँचते ही जो काम उसने सबसे पहले किया वह था पुल के रस्सों को काट देना। उसका परिणाम यह हुआ कि हिन्दू सेना को नदी के पार से सहायता पहुँचनी बन्द हो गई।

यह घटनावश ही था कि ठीक उसी दिन, जिस दिन जमान खाँ

ने पुल के रस्से कटवाए थे, महाराजा रणजीतसिंह अपनी सेना तथा अपने साथ फूलासिंह अकाली की सेना लिए हुए अटक नदी के किनारे पर पहुँच गये। वहाँ उनको समाचार मिला कि सरदार हरिसिंह और राजकुमार शेरसिंह शत्रु की सेना को गाजर-मूली की भाँति काट रहे हैं। किन्तु पुल कट जाने से अब भय उत्पन्न हो गया था कि इस ओर से सहायता न पहुँच पाने पर कहीं उनका उत्साह क्षीण न हो जाए।

महाराजा को चिन्ता होने लगी। अन्य कोई उपाय न देख उन्होंने नदी में अपना घोड़ा डाल दिया। उनके पीछे-पीछे सरदार फूलासिंह अकाली अपने घोड़े पर नदी में उतरे। उनको देख सारी सेना नदी में उतर गई। इस प्रकार सारी सेना दूसरे किनारे पर जा पहुँची। उनका वहाँ पहुँचना था कि गाजियों का साहस टूटने लगा। बस फिर क्या था, उनमें भगदड़ मच गई। जिसका जिस ओर मुख था वह उसी दिशा में भाग चला। यहाँ तक कि अपने हताहतों को ले जाने का अवसर भी उनको नहीं मिला। इस प्रकार सरदार हरिसिंह नलवा ने जहाँगीरा दुर्ग पर अधिकार कर लिया और वहाँ पर उन्होंने महाराजा की पताका फहरा दी।

जेहादी लोग पुनः नोशहरा के मैदान पर एकत्रित होने लगे। मोहम्मद अजीम खाँ ने अपने भाई की सहायता के लिए बहुत बड़ी सेना और युद्ध सामग्री भेज दी। 14 मार्च को हिन्दू सेना ने अजीम खाँ की सेना पर नोशहरा के मैदान पर आक्रमण कर दिया। बड़ा लोमहर्षक युद्ध हुआ। अफगान बड़ी वीरता से लड़े। किन्तु सरदार हरिसिंह नलवा की सेना के सम्मुख उनके पैर उखड़ गए। उनकी छः तोपें छीन ली गईं। उन्हें हथियाने के लिए गाजी हाथोंहाथ युद्ध करने लगे किन्तु असमर्थ रहे। अजीम खाँ बारकजाई का अकस्मात् हरिसिंह नलवा से सामना हो गया। नलवा को देखकर बारकजाई के होश उड़

गए। वह न तो उन पर वार कर सका और न वहाँ से भाग ही पाया, पर ज्यों ही नलवा ने उसे ललकारा वह भाग खड़ा हुआ। भागकर अजीम खाँ स्वयं मिचनी जा पहुँचा। उसके भागते ही सारी अफगान सेना में भगदड़ मच गई। इस विजय से उस सीमा प्रदेश में रणजीतसिंह का राज्य स्थापित हो गया। किन्तु इस युद्ध में अकाली फूलासिंह वीरगति को प्राप्त हो गये। यह एक बहुत बड़ी क्षति थी।

तब महाराजा रणजीतसिंह ने उस सारे क्षेत्र का दौरा किया। वे जहाँ-जहाँ गए पठानों ने उनकी आधीनता स्वीकार कर ली और उनका स्वागत किया। कुछ समय के लिए उन्होंने सरदार हरिसिंह नलवा को वहाँ सुव्यवस्था स्थापित करने के लिए छोड़ दिया और स्वयं वहाँ से वापस चल दिए। सरदार हरिसिंह भी 7 मास तक वहाँ का सुप्रबन्ध कर फिर महाराजा की आज्ञा से हजारा वापस आ गये।

नलवा मृत्यु के मुख में

तब तक हजारे के तरीन और तोरखेल मुसलमान अपने नेता मोहम्मद खाँ तरीन के नेतृत्व में फिर विद्रोह करने लगे थे। वे वहाँ के पर्वतीय क्षेत्र में जाकर युद्ध की तैयारी करने लगे। वहाँ की तीन चार अन्य जातियों को मिलाकर उन्होंने लगभग 15 हजार सेना एकत्रित कर ली थी। ये लोग पहाड़ से उतरकर मैदानी क्षेत्र में आते और लूटमार कर फिर वापस वहीं छिप जाया करते। जब उनको पता चला कि हरिसिंह नलवा उनको भगाने के लिए उधर आ रहे हैं तो उन्होंने वृक्षों और पत्थरों से उनका मार्ग रोकना आरम्भ कर दिया। किन्तु हरिसिंह के सैनिक इससे विचलित होने वाले नहीं थे। तब शत्रु ने मार्ग में एक स्थान पर सुरंग लगा दी और जब हरिसिंह की सेना वहाँ से निकली तो सुरंग में भरे बारूद को उन्होंने आग लगा दी। उसका परिणाम यह हुआ कि विस्फोट से मार्ग में बिछे हुए पत्थर ऊपर

आकाश पर उठे और फिर धरती पर गिरते हुए लुढ़कने लगे। इसमें वे अपने साथ कई सैनिकों को भी लुढ़का ले गए। न केवल सैनिक ही अपितु स्वयं सरदार हरिसिंह इस प्रकार लुढ़कर नाले में जा गिरे। इससे उनके सिर पर चोट आई और सारा शरीर काँटों से छलनी हो गया।

सरदार हरिसिंह के शरीर से बहुत रक्त निकल गया था, इस कारण वे मूर्च्छित हो गए। उनकी सेना में यह प्रवाद फैल गया कि सरदार हरिसिंह नलवा वीरगति को प्राप्त हो गए। सरदार महानसिंह ने उनकी देह को ढूँढ़ने के लिए इधर-उधर अपने सैनिक भेजे किन्तु वह उनको कहीं भी नहीं मिली। वे हताश होकर लौट ही रहे थे कि किसी सैनिक को वे एक झाड़ी में पड़े हुए दिखाई दे गए। उसने अपने साथियों को बुलाया और रक्त से सनी उनकी देह को झाड़ी से बाहर निकाला। सिर से निरन्तर रक्त बह रहा था। नाड़ी की गति बड़ी धीमी थी। उनको डोली में डालकर डेरे पर ले जाया गया और साधारण उपचार कर शेष चिकित्सा के लिए हरिपुर भेज दिया गया। इस प्रकार उनके प्राण बच गये। कुछ दिनों बाद वे हरिपुर में रहते हुए पूर्ण स्वस्थ हो गए।

सरदार महानसिंह ने दूसरे दिन इसका बदला लिया। उन्होंने शत्रु पर आक्रमण किया और उसके गाँव को जलाकर भस्मीभूत कर दिया। इस घाटी पर उनका अधिकार हो गया। हरिसिंह नलवा के घायल होने का समाचार सुनकर महाराजा स्वयं उन्हें देखने के लिए हरिपुर पहुँचे। तब तक हरिसिंह स्वस्थ हो चुके थे और मोहम्मद खाँ तरीन भी बन्दी बना लिया गया था। महाराजा उसे लेकर लाहौर को चल दिये।

हरिसिंह नलवा अपने किसी निजी कार्य से हजारा से गुजरांवाला चले गए तो मोहम्मद खाँ तरीन के भतीजे वोस्ता खाँ को

इसका पता चल गया। उसने श्रीकोट की घाटी में फिर से उपद्रव करना आरम्भ कर दिया। इसका समाचार पाते ही नलवा लाहौर पहुँच गए और उन्होंने मोहम्मद खाँ तरीन को इस शर्त पर छुड़ाया कि वह अगला-पिछला सारा शेष राजस्व चुकायेगा और भविष्य में किसी प्रकार उपद्रव नहीं करेगा।

किन्तु हजारा पहुँचते ही स्वच्छन्द विचरने पर तरीन वह सब शर्तें भूलने लगा। उसने फिर उपद्रव करना आरम्भ कर दिया। नलवा को उस पर बड़ा क्रोध आया और उसने उस पर आक्रमण कर उसको घेर लिया। वह किसी भी प्रकार भागने में असफल रहा। उसे और उसके भतीजे दोनों को पकड़ लिया गया। जब उसको नलवा के सम्मुख लाया गया तो मारे लज्जा के वह अपना सिर ऊँचा नहीं उठा सका।

नलवा ने उससे पूछा कि उसके इस विश्वासघात के लिए उसे क्या दण्ड दिया जाए? किन्तु वह कुछ नहीं बोल पाया। तब उसे एक दिन का अवकाश दिया गया कि वह सोचकर बताये कि उसको क्या दण्ड मिलना चाहिए। इससे उसको इतनी ग्लानि हुई कि एक दिन पूरा होने से पहले ही उसने विष पान कर आत्महत्या कर ली। शेष तीनों विद्रोहियों को नलवा ने सबके सामने तोपों से उड़वा दिया। इस कठोर दण्ड से तीन वर्ष तक फिर किसी को विद्रोह करने का साहस नहीं हुआ। इस प्रकार उस क्षेत्र में शान्ति स्थापित हुई। उसके बाद हरिसिंह नलवा ने उस क्षेत्र के अन्य अनेक घाटियों और कबीलों पर आक्रमण कर उनको अपने राज्य में सम्मिलित कर लिया।

पठान पराजित

बरेली का एक मौलवी जिसका नाम मौलवी सैयद अहमद था, सन् 1822 में हज करने के लिए मक्का गया। वहाँ से लौटते हुए वह

काबुल में रुक गया। वह वहाँ के अमीर दोस्त मोहम्मद खाँ से मिला और उसने उसको उकसाया कि वह धन तथा शस्त्रों से उसकी सहायता करे तो वह अटक से काबुल की ओर का सारा प्रदेश महाराजा रणजीतसिंह के राज्य से छीनकर उसको दिला सकता है। दोस्त मोहम्मद ने मौलवी सैयद अहमद की बात तुरन्त मान ली। न केवल इतना, उसने अपने भाई सुलतान मोहम्मद खाँ और यार मोहम्मद खाँ को भी जोकि पेशावर में महाराजा रणजीतसिंह के करद शासक थे, उसकी सहायता करने के लिए लिख दिया।

उनकी सहायता पाकर अहमदशाह खैबर के पर्वतों से निकलकर यूसुफ-जड़ियों की राजधानी पंतजार जा पहुँचा। वहाँ उसने पठानों को एकत्रित कर घोषणा कर दी कि खुदा ने उसको हिन्दुओं के विरुद्ध धर्मयुद्ध करने के लिए खलीफा बनाकर भेजा है। उसने उनको कहा कि उसके साथ धर्मयुद्ध में सम्मिलित होना उनका परम कर्त्तव्य है, यह उनके लिए पुण्य का कार्य है। भोले पठान उसके बहकावे में आ गये। जेहाद का नाम सुनकर दिल्ली और रामपुर के भी बहुत-से मुसलमान सोना और रुपया लेकर सैयद अहमद से आकर मिल गये।

उन्हीं दिनों अटक के पार नदी के पश्चिमी तट पर नलवा के सैनिकों ने खैराबाद में एक दुर्ग बनाया था। सैयद अहमदशाह ने पहले उस पर आक्रमण करने का निश्चय किया। बहुत बड़ी संख्या में वे उसके निकट एकत्रित हो गए। संयोग की बात थी कि उन्हीं दिनों हरिसिंह नलवा अपनी 8 हजार सेना के साथ उस प्रदेश का दौरा कर रहे थे। खैराबाद के किलेदार ने सरदार नलवा को सैयद की चढ़ाई का समाचार लिख भेजा। समाचार पाते ही नलवा खैराबाद पहुँच गए। दूसरे दिन गाजी लोग सैदू के खुले मैदान में शुक्रवार की नमाज पढ़कर निकले ही थे कि नलवा ने उन पर हल्ला बोल दिया।

घमासान युद्ध हुआ। पठानों की संख्या हिन्दू सेना की अपेक्षा बीस गुना अधिक थी। वे बड़ी वीरता से युद्ध करते रहे। दिन-भर तुमुल संग्राम होता रहा। हिन्दू सैनिकों ने अपनी तलवार के ऐसे जौहर दिखाए कि पठानों की लाशों से युद्धक्षेत्र छा गया। सहसा तीसरे प्रहर घनघोर घटा छा जाने से अन्धकार हो गया। इससे लाभ उठाकर सैयद अहमदशाह अपने प्राण बचाकर भागा और लूँदखूबड़ जा पहुँचा। इस प्रकार 1 लाख 50 हजार पठानों पर केवल 8 हजार हिन्दू सैनिकों ने विजय प्राप्त कर ली।

सैयद अहमदशाह के भागने का समाचार पाकर नलवा ने अपने 6 हजार सैनिकों के साथ उसका पीछा किया। सैयद को पता चला तो वह वहाँ से भी भाग गया। नलवा उसके पीछे-पीछे गए। तुलाँदा ग्राम के निकट 14 हजार गाजियों ने नलवा का मार्ग रोक दिया। किन्तु सैयद स्वयं वहाँ से भी भागकर पंजतार की पहाड़ियों में जा छिपा। नलवा क़ो मालूम था कि भाला युद्ध से पठान लोग बहुत डरते हैं। उन्होंने अपने दो रिसालों को उन पर धावा बोलने का आदेश दिया। भाले देखकर पठानों में भगदड़ मच गई। उनको खदेड़ती हुई नलवा की सेना पंजतार जा पहुँची। सैयद तो वहाँ से भी भाग गया किन्तु उसके शिष्य मुकरब खाँ ने सामना किया। वह भी अधिक नहीं टिक सका। इस प्रकार पंजतार पर भी हिन्दू सेना ने अपना अधिकार कर लिया। एक मास तक उस क्षेत्र में रहकर वहाँ का ठीक प्रबन्ध कर सरदार नलवा फिर हजारा लौट गये।

नलवा राजदूत के रूप में

अफगानिस्तान को भारत का अंग बनाने की महाराजा रणजीतसिंह की लालसा अभी तक पूर्ण नहीं हुई थी, यद्यपि अटक के पार के कई भागों में उनका राज्य स्थापित हो गया था। उधर काबुल

का अमीर दोस्त मोहम्मद खाँ तथा कुछ अन्य पठान कबीले वाले यह समझकर प्रसन्न हो रहे थे कि महाराजा रणजीतसिंह और अंग्रेजों में यद्यपि ऊपर से मित्रता दिखाई देती है किन्तु वास्तव में उनमें मित्रता नहीं है। पठान समझते थे कि इन दोनों में मित्रता न होना ही उनके हित में है।

उधर महाराजा रणजीतसिंह को जब इसका ज्ञान हुआ तो उन्होंने यही उचित समझा कि पठानों को अन्तिम बार पाठ पढ़ाने से पूर्व एक बार अंग्रेज़ों से भी बात कर ली जाय। इसके लिए उन्होंने हरिसिंह नलवा को ही सर्वाधिक उपयुक्त व्यक्ति समझा। तदनुसार उन्होंने हरिसिंह नलवा को अपना दूत बनाकर शिमले में गवर्नर जनरल से भेंट के लिए भेजा।

हरिसिंह नलवा के सहायक के रूप में दीवान मोतीराम साथ गए और प्राइवेट सेक्रेटरी थे फकीर अजीजदीन। इसके अतिरिक्त सहायक के रूप में तीन अन्य सरदार भी उनके साथ थे। जो सेना इनके साथ भेजी गई उसके नायक गुलाबसिंह थे। भेंट देने के लिए बहुत कुछ सामग्री थी। सोने-चाँदी के साज-सामान से सजे दो हाथी और एक घोड़ा भी था, एक मोतियों का कण्ठहार था, बाजूबन्द थे, बहुमूल्य दुशाले थे। नलवा अपने दल के साथ जब लुधियाना पहुँचे तो वहाँ गवर्नर के प्रतिनिधि रेंड साहब ने उनका भव्य स्वागत किया और उनके साथ ही वह भी शिमले के लिए चल दिया।

शिमला के निकट पहुँचने पर अंग्रेजों ने इनका स्वागत करना आरम्भ कर दिया। वहाँ इनके साथियों को सुख-सुविधापूर्वक रखा गया और दिल खोलकर इनका आतिथ्य किया जाने लगा। शीघ्र ही भेंट का दिन भी नियत कर दिया गया। शिमला की एक ऊँची चोटी पर भेंट के लिए तम्बू ताने गये। नलवा की कोठी से उस तम्बू तक के मार्ग में अंग्रेजी सेना नलवा के स्वागत सलामी के लिए नियत की

गई। अनेक अंग्रेज उच्चाधिकारी नलवा को लेने के लिए आये और अन्य अनेक मार्ग में उनके साथ हो लिए। तम्बू से कुछ पहले चीफ सेक्रेटरी ने नलवा का स्वागत किया और जब तम्बू के निकट पहुँचे तो स्वयं गवर्नर जनरल तम्बू से बाहर निकलकर आया और बड़े प्रेम से नलवा के गले मिला। स्वयं उसने नलवा की बाँह पकड़ी और उनको सोने की कुरसी पर बैठाया। उसके बाद स्वयं गवर्नर जनरल बैठे।

कुशल समाचार के उपरान्त हरिसिंह नलवा के आदेश पर अजीजदीन ने तीन हजार एक सौ रुपया गवर्नर जनरल के सिर पर वार कर उनकी सेना में वितरण करने के लिए दिये। उत्तर में अंग्रेजों की ओर से भी सिर वारना हुआ और ढाई हजार रुपया नलवा की सेना में वितरण के लिए दिया गया। फिर महाराजा की ओर से 5 घोड़े, कई पशमीने के दुशाले आदि बहुमूल्य उपहार समर्पित किये गये। फिर इत्र, पान-सुपारी का व्यवहार होने के बाद भेंट को पूर्ण समझा गया। उस दिन से अंग्रेजी सरकार और लाहौर दरबार में पक्की मित्रता हो गई। रात्रि को नाच-गाने का प्रबन्ध किया गया था। उसके बाद नलवा की शिमला से वापसी हुई।

गवर्नर जनरल स्वयं महाराजा से मित्रता का इच्छुक था। इस भेंट से वह प्रसन्न हुआ। तब गवर्नर जनरल ने महाराजा का धन्यवाद करने के लिए कप्तान बाड और मैकग्रेगर को लाहौर भेजा। तभी यह निश्चय हुआ कि गवर्नर जनरल और महाराजा रणजीतसिंह की भेंट होनी चाहिए। इस भेंट के लिए रोपड़ का स्थान उपयुक्त समझा गया।

दशहरा त्योहार के उपरान्त 25 अक्टूबर 1831 को गवर्नर जनरल से मिलने के लिए महाराजा रणजीतसिंह रोपड़ जा पहुँचे। एक बहुत बड़ी सेना इनके साथ गई थी। उसी दिन गवर्नर जनरल भी

रोपड़ पहुँचे थे। शिष्टाचार के रूप में गवर्नर की ओर से मेजर जनरल रेमजे और चीफ सेक्रेटरी महाराज की सेवा में उपस्थित हुए और फिर महाराजा की ओर से सरदार हरिसिंह नलवा और युवराज खड्गसिंह गवर्नर जनरल की सेवा में उपस्थित हुए। दूसरे दिन हाथी पर सवार होकर बड़े जलूस के साथ महाराजा साहब गवर्नर जनरल से मिलने जाए। उधर से लार्ड विलियम बेंटिक भी सदलबल महाराजा के स्वागत के लिए निकले। आमना-सामना होने पर परस्पर प्रेम से हाथ मिलाये गए। फिर महाराजा अपने हाथी से उठकर गवर्नर जनरल के हौदे में जा बैठे। और तब वह जलूस गवर्नर जनरल के डेरे पर पहुँचा।

वहाँ पहुँचकर महाराजा का खूब सत्कार किया गया। इसी प्रकार दूसरे दिन गवर्नर जनरल महाराजा से मिलने के लिए आये। तब महाराजा की ओर से उनका बड़े जोर से आतिथ्य-सत्कार किया गया।

इस भेंट में अनेक राजनीतिक समझौते हुए। एक सन्धि पत्र भी तैयार किया गया जिसमें अटक के पार के मार्ग का विशेष उल्लेख किया गया। उसी समय महाराजा ने राजकुमार खड्गसिंह को अपना उत्तराधिकारी भी नियुक्त कर दिया।

इन दोनों भेंट की सफलता का सारा श्रेय हरिसिंह नलवा को दिया गया। इस प्रकार नलवा दिन-प्रतिदिन महाराज रणजीतसिंह की दृष्टि में ऊँचे उठते रहे।

नलवा की तीर्थ-यात्रा

दूत का यह कार्य सम्पन्न करने के उपरान्त नलवा कुछ दिन का अवकाश लेकर तीर्थ-यात्रा के लिए निकल पड़े। सबसे पहले वे काशी पहुँचे। वहाँ भी उन्होंने अपनी छाप छोड़ी। काशी में गंगाजी के

किनारे शवदाह के लिए कर देना पड़ता है। संयोग की बात है कि जब नलवा काशी में थे तब अमृतसर निवासिनी किसी निर्धन महिला का पुत्र चल बसा। वह दाह के लिए उसको श्मशान ले गई तो उससे कर माँगा गया। उसके पास तो कुछ था ही नहीं। यह बात नलवा के कानों तक पहुँची तो उन्होंने उसकी उचित व्यवस्था का आदेश दिया और फिर श्मशान के दारोगा को बुलाकर पंजाब-वासियों से यह कर न लेने के लिए सदा-सदा के लिए विशेष प्रबन्ध करवा दिया। यही कारण है कि आज भी पंजाबी मुर्दा काशी में बिना किसी प्रकार का कर लिये जलाया जाता है। इसके लिए नलवा ने श्मशान घाट का एक छोटा-सा भाग खरीद लिया।

काशी से नलवा ने कई अन्य तीर्थ-स्थानों की यात्रा की और सब स्थानों पर उन्होंने अपनी श्रद्धा समर्पित की। नलवा जहाँ-जहाँ भी गये उन्होंने हिन्दुओं के संगठन की भी चर्चा की।

इस प्रकार इस तीर्थ-यात्रा के निमित्त नलवा ने हिन्दू जाति के संगठन का भी कार्य किया। जहाँ कहीं भी वे गए उन्होंने महाराजा रणजीतसिंह की विजय का घोष किया। यद्यपि नलवा का नाम भारत के कोने-कोने में अब तक पहुँच चुका था। लोग सुनते कि नलवा तीर्थ-यात्रा के लिए आए हैं, एक बड़ी भीड़ उनके दर्शनों के लिए वहाँ एकत्रित हो जाया करती थी।

अब तक यह भी प्रसिद्ध हो चुका था कि पठान मातायें अपने बच्चों को नलवे के नाम से डराकर उनको रोते से चुप कराती हैं। वे उनको इसी भय से सोने के लिए विवश करती हैं। ऐसे नरवीर के दर्शन कौन नहीं करना चाहेगा?

नलवा की यह तीर्थयात्रा भी एक प्रकार से उनका दौत्य कार्य ही था। क्योंकि इस यात्रा में भी उन्होंने पंजाब केसरी के राज्य का प्रचार-प्रसार किया था।

किन्तु नलवा जैसे व्यक्ति को रणभूमि से अधिक समय तक अलग रहना सुखकर नहीं होता। अत: वे भी तुरन्त ही लौटकर अपने क्षेत्र में प्रवृत्त हो गए।

नलवा सेनापति के रूप में

पठानों ने जब महाराजा रणजीतसिंह को अंग्रेजों से मिलने-मिलाने में व्यस्त देखा तो उन्होंने फिर सिर उठाना आरम्भ कर दिया। सैयद अहमदशाह जो पराजित होने पर भागकर छिप जाया करता था, उसने इस बार फिर गाजियों को एकत्रित कर लिया और उन्हें लेकर कागान में डेरा डाल दिया। नलवा को जब इसका पता चला तो वे उसको दबाने के लिए अपनी सेना लेकर चल दिये। उनके साथ राजकुमार शेरसिंह तथा अन्य अनेक सरदार भी थे।

30 मई सन् 1832 को प्रात:काल ही उन्होंने गाजियों पर सहसा आक्रमण कर दिया। नलवा के साथ राजकुमार शेरसिंह ने भी ऐसी तलवार चलाई कि गाजियों की लाशों के ढेर बिछ गये। इस प्रकार घमासान युद्ध हो रहा था कि अकस्मात् सैयद अहमदशाह राजकुमार शेरसिंह के सामने आ गया। बस फिर क्या था। राजकुमार शेरसिंह ने तलवार के एक ही वार से उसका सिर धड़ से अलग कर दिया।

सैयद अहमदशाह के गिरते ही मुसलमान तथा पठान सेना में भगदड़ मचने लगी। उसी प्रकार उधर संयोग से मौलवी इस्माइल सरदार हरिसिंह नलवा के सामने जा पड़े तो उन्होंने अपनी तलवार से उसकी गर्दन को नाप लिया। पठान भागने लगे। हिन्दू सेना ने उनका पीछा किया और इस प्रकार और भी अन्य अनेक पठान भागते-भागते यमपुर जा पहुँचे। इस युद्ध में हिन्दू सेना के भी अनेक वीर खेत रहे थे।

संग्राम की समाप्ति पर सैयद अहमदशाह और मौलवी इस्माइल के लोथों के चित्र बनवाए गए और उन्हें लाहौर दरबार में भेज दिया

गया। महाराज उन्हें देखकर इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने नलवा और राजकुमार को पचास हजार रुपये पारितोषिक के रूप में दिये।

सैयद अहमदशाह और मौलवी इस्माइल के मारे जाने से ही अफगानों की समस्या का अन्त नहीं हो गया। इसके लिए निर्णायक युद्ध अभी शेष था। उस निर्णायक युद्ध के लिए महाराजा रणजीतसिंह ने पेशावर में आक्रमण करनेवाली सेना का सेनापति सरदार हरिसिंह नलवा को बनाया। सेनापति हरिसिंह नलवा अपनी सेना के साथ 20 अप्रेल 1834 को एक बार फिट अटक जा पहुँचे और आक्रमण की तैयारी करने लगे। 6 दिन बाद उनकी सहायता के लिए राजकुमार नौनिहालसिंह भी वहाँ पहुँच गए। नावों के पुल द्वारा सारी सेना नदी के पार पहुँच गई। तभी हरिसिंह को विदित हुआ कि चमकनी में बहुत बड़ा पुस्तकागार अभी तक सुरक्षित है। महाराजा की इच्छा थी कि उसको सुरक्षित रखा जाय। सेनापति नलवा ने इसकी उचित व्यवस्था कर दी।

नलवा की सेना जब यहाँ से आगे बढ़ने लगी तो हाजी खाँ और खान मोहम्मद खाँ ने उनका मार्ग रोका किन्तु वे अधिक नहीं ठहर पाए। उनको तोपों से उड़ा दिया गया। इस प्रकार आगे बढ़ते हुए 6 मई 1834 को इन्होंने पेशावर नगर में प्रवेश किया और किला बालाहिसार पर अधिकार कर लिया और उसका नाम बदलकर सुमेरगढ़ रख दिया गया। पेशावर के हिन्दू-मुसलमानों ने पठानों से मुक्ति की प्रसन्नता में रात को दीपावली मनाई। नलवा ने सारे प्रदेश का भ्रमण किया और उसको सँभाले रखने के लिए जहाँ कहीं भी सेना को रखना आवश्यक समझा गया वहाँ उन्होंने सेना का प्रबन्ध कर दिया।

जब पेशावर में सब प्रकार से सुख-शान्ति स्थापित हो गई तो अगले वर्ष स्वयं महाराजा पेशावर पधारे। वहाँ पर उन्होंने एक बहुत बड़ा दरबार किया।

काबुल का शासक दोस्त मोहम्मद खाँ यह सब देख रहा था। वह पेशावर को छीनना चाहता था। उसके लिए उसने असंख्य धर्मयोद्धाओं को एकत्रित किया और अपनी सेना लेकर खैबर दर्रे पर पहुँच गया। मार्ग में बहुत-से अफरीदी और मोहम्मदी जेहादी उसके साथ हो लिये। सहसा 11 मई 1835 को दोस्तमोहम्मद ने नलवा की सेना पर आक्रमण कर दिया। नलवा असावधान नहीं था। उसने तहकालवाला के मैदान में अर्द्धचन्द्राकार मोर्चा बनाया। बड़ा घमासान युद्ध हुआ। अमीर ने लड़ने में किसी प्रकार की कसर नहीं छोड़ी। किन्तु सायंकाल तक वह बुरी प्रकार नलवा की सेना के घेरे में फँस गया था। अब तक उसकी सेना की बहुत बड़ी हानि भी हो चुकी थी। उसने पीछे लौटना चाहा किन्तु चारों ओर से हिन्दू सेना उसको घेरे हुए थी। यद्यपि पीछे लौटना सुगम नहीं था। फिर जब दिन ढल गया और मैदान का अँधेरा छा गया तो एक बार साहस करके वह हिन्दू सेना के एक भाग पर इस प्रकार टूट पड़ा कि उसका घेरा तोड़कर भाग निकलने में सफल हो ही गया। उसने फिर काबुल पहुँचकर ही साँस लिया, पीछे की ओर मुड़कर भी नहीं देखा।

इस युद्ध में दोस्तमोहम्मद खाँ बहुत सामग्री छोड़ गया था। इतना ही नहीं अपितु उसके बाद भी जब तक दोस्तमोहम्मद खाँ जावित रहा उसे फिर कभी पेशावर की ओर मुख करने का साहस ही नहीं हुआ।

दोस्तमोहम्मद के भाग जाने के बाद नलवा ने उस प्रदेश की व्यवस्था की ओर ध्यान दिया। स्थान-स्थान पर उसने दुर्ग बनवाए और कहीं-कहीं सैनिक टुकड़ियों के लिए चौकियाँ भी बनवाईं।

औरंगजेब के समय से ही इस प्रदेश के प्रत्येक वयस्क हिन्दू को स्वयं उपस्थित होकर एक दीनार वार्षिक जजिया देना होता था। नलवा सरदार ने उसे तो तुरन्त बन्द करवा दिया। उसके बदले में 4

रुपया वार्षिक प्रति घर के हिसाब से वहाँ के मुसलमानों पर कर लगा दिया गया जिससे कि हिन्दुओं के अपमान का बदला लिया जा सके।

नलवा सरदार ने इस प्रदेश को पाँच भागों में विभक्त कर इसे हजारा के अन्तर्गत कर दिया। कृषि कार्य के लिए उन्होंने काबुल नदी से नहरें खुदवाईं। इससे वहाँ के किसानों की दशा सुधरने लगी। उस समय उस प्रान्त से 1221630 रुपए राजस्व मिलने लगा था। वहाँ के निवासियों ने चैन की साँस ली। सरदार सेनापति नलवा पर बहुत प्रसन्न हुए।

जमरोद पर आक्रमण

काबुली पठान बार-बार सिर उठाया करते थे। इस प्रकार वे हरिसिंह नलवा को चैन की साँस नहीं लेने देते थे। नलवा उसका कोई स्थायी समाधान चाहता था। इस उद्देश्य से उसने खैबर के निकट जमरोद पर एक सुदृढ़ दुर्ग बनवाया। 7.10.1836 को यह दुर्ग बनवाना आरम्भ किया और दो मास में दुर्ग बनकर तैयार भी हो गया। उस समय उसके भीतर 800 पैदल सेना, 200 घुड़सवार, 80 तोपें और बहुत-सी युद्ध सामग्री रखी गई। नलवा ने हजारा सरदार महासिंह को बुलवाया और उसे जमरोद का किलेदार बना दिया। खैबर की ओर से आनेवाली एक नहर से इस किले के लिए पानी का प्रबन्ध किया गया। खैबर के अफरीदियों को इसके लिए 12 सौ रुपया वार्षिक जागीर दी गई जिससे कि वे उस नहर को कभी बन्द न करें। इसके अतिरिक्त दुर्ग के अन्दर एक बहुत बड़ा कुआँ भी बनवा लिया गया, जिससे कि यदि कभी किसी कारणवश नहर बन्द हो जाय तो कम से कम तुरन्त पानी के बिना तड़पने से तो बचा जा सके।

इसके अतिरिक्त नलवा ने पहाड़ी मार्गों पर कुछ छोटे किले भी बनवाए, जिससे कि मार्ग में उसको किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न न

हो। किन्तु काबुल के शासक को जब इन गतिविधियों का ज्ञान हुआ तो उसको इससे बहुत परेशानी होने लगी। वह घबरा गया किन्तु नलवा के सामने आने का उसमें साहस नहीं था। तब फिर अन्य कोई मार्ग न देख उसने मुसलमानों की वही पुरानी रीति अपनाई। उसने धर्मयुद्ध के लिए मुसलमानों को पुकारा। इसके लिए उसने सबसे पहले अपने पाँच पुत्रों को आगे किया। उसने अपने पाँचों पुत्र इस्लाम को समर्पित कर दिये। बस फिर क्या था? इससे पठानों में उत्साह भर गया। फिर तो ऐसा कोई भी घर न रहा जिसने इस्लाम की रक्षा के लिए कोई न कोई आदमी न दिया हो। कुछ ही दिनों में पठानों का एक टिड्डी-दल जेहाद के लिए एकत्रित हो गया।

इस सेना का प्रबन्ध अमीर दोस्तमोहम्मद खाँ ने अपने विश्वस्त सहायक नायब मिर्जा समीर खाँ को सौंप दिया। इस प्रकार व्यवस्था करके यह सेना 15 अप्रैल 1837 को जमरोद की ओर प्रस्थान कर गई। उधर सेनापति हरिसिंह नलवा कार्याधिक्य के कारण उन दिनों बहुत थक गए थे। उससे उनको ज्वर भी होने लगा था। चिकित्सकों ने जब उनको देखा तो उनको लम्बे समय तक विश्राम करने का परामर्श दिया। उधर लाहौर में कुँवर नौनिहालसिंह का विवाह था। इसलिए पेशावर की हिन्दू सेना का अधिकांश भाग लाहौर भेज दिया गया था। क्योंकि पंजाब केसरी अंग्रेज सेनापतियों को अपना वैभव दिखाना चाहते थे इसलिए अपने राज्य का सब कुछ दर्शनीय और प्रदर्शनीय उन्होंने लाहौर में एकत्रित कर लिया था।

इस अवस्था में जब नलवा को विदित हुआ कि दोस्तमोहम्मद खाँ जमरोद पर आक्रमण करने की तैयारी में लगा है तो उन्होंने एक तीव्रगामी साँडनी सवार द्वारा महाराज को पत्र भेजा कि पेशावर की सेना को तुरन्त वापस भेज दिया जाए। महाराज की ओर से नलवा को 30 अप्रैल तक कोई उत्तर प्राप्त नहीं हुआ और उधर अफगानी सेना

जमरोद पहुँच गई थी। यहाँ तक कि उन्होंने 28 अप्रैल को ही तोपों के साथ दुर्ग पर गोले बरसाने आरम्भ कर दिए थे। किलेदार महासिंह भी तोपों का उत्तर तोपों में देने लगा था। इस प्रकार दोनों ओर से तोपों के गोले आग बरसाने लगे। हताहत सैनिकों से रणभूमि पटने लगी। दिन-भर युद्ध होता रहा किन्तु शाम को देखा तो अफगान सैनिक अभी भी वहीं पर थे, जहाँ से उन्होंने प्रात:काल युद्ध आरम्भ किया था। वे एक इंच भी आगे नहीं बढ़ पाए थे।

रात हो जाने पर दोनों ओर की सेनाओं में युद्धविराम हो गया किन्तु प्रात:काल होने से पूर्व ही फिर पिछले दिन की भाँति तुमुल युद्ध आरम्भ हो गया। अफगान गाजी दुर्ग पर आक्रमण करने की ठानते किन्तु हिन्दू सेना उनको तोपों का निशाना बनाकर भगा देती। तो भी यह युद्ध अधिक समय तक चलना कठिन था। क्योंकि अफगानों की संख्या 30 हजार थी जबकि महासिंह के पास उस समय केवल एक सहस्र सेना रह गई थी। इसका परिणाम यह हुआ कि अफगानों ने दुर्ग का घेरा डाल लिया। इससे बाहर के संसार से दुर्ग का सम्पर्क विच्छिन्न हो गया। इसके साथ ही अफगानों ने किले के भीतर जानेवाली नहर को भी काट दिया, इससे भीतर पानी जाना भी बन्द हो गया। तब वहाँ जो कुआँ था उसके जल से काम चलाया जाने लगा।

इतना ही नहीं, अफगानों की तोपों की मार से दुर्ग की एक भुजा भी गिर गई किन्तु फिर भी अफगानों को दुर्ग में घुसने का साहस नहीं हो पाया। क्योंकि वे जानते थे कि यदि भीतर गए तो वहाँ हिन्दू सेना के साथ उनको हाथोंहाथ लड़ना पड़ेगा, इससे वे घबराते थे। एक बार एक नायक मुहम्मद अफजल खाँ दुर्ग में घुसने की चेष्टा करने भी लगा था किन्तु मिर्जा समीर खाँ ने उसे यह कहकर रोक दिया कि भीतर जाने का अभिप्राय है अपनी मौत से खेलना। इससे तो

यही उत्तम है कि उनको घेरे में बन्द रखकर स्वयं ही भूखों मर जाने दिया जाए।

अन्तिम युद्ध

अफगानों की ओर से जब किले की घेराबन्दी हो गई तो रात को युद्ध रुक जाने पर किलेदार महासिंह ने अपने विश्वस्त सरदारों की एक सभा बुलाई। उसमें उसने अपनी वस्तुस्थिति का वर्णन किया और फिर उन सबको अपने देशधर्म पर बलि होने का आह्वान किया। उसने कहा कि दुर्ग के जिस भाग में छिद्र हो गया है उसे रात-भर में रेत की बोरियाँ भरकर बन्द कर दिया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त हमें एक कोई ऐसा वीर युवक चाहिए जो किसी प्रकार किले से बाहर निकलकर यहाँ का सारा समाचार पेशावर में सेनापति हरिसिंह नलवा तक पहुँचा दें।

सैनिकों का ऐसा सुनना था कि वे विद्युत गति से कार्य करने लगे। कुछ सैनिक टूटी दीवार पर रेत के बोरे भरने लगे और पहर-डेढ़ पहर रात गये उन्होंने उस छिद्र को बन्द कर दिया।

यह एक काम तो हो गया। दूसरा कार्य नलवा को सूचना देने का था। क्योंकि अफगानों ने किले को इस प्रकार घेर रखा था कि कहीं तिल रखने को भी स्थान नहीं था। ऐसी स्थिति में किसी को सुरक्षित बाहर निकल जाने का साहस नहीं हुआ।

ऐसे समय में हरिशरणकौर नाम की एक वीरांगना ने साहस का परिचय दिया। उसने कहा, "आप सरदार नलवा के लिए पत्र लिखिए। मैं यत्न करूँगी कि उसको यथास्थान पहुँचा दूँ।"

उस महिला की निष्ठा में तो किसी प्रकार का सन्देह नहीं था। किन्तु उसने जिस साहस का परिचय दिया था वह सराहनीय और प्रशंसनीय था। अन्त में उसको पत्र लिखकर दे दिया गया। तब उससे

पूछा गया कि यहाँ यह किस प्रकार विदित होगा कि वह सकुशल पेशावर पहुँच गई है ?

कुछ सोचकर उसने कहा, ''प्रात:काल बहुत सवेरे ही यदि आपको पेशावर की ओर से तोप दागने की आवाज सुनाई दे जाय तो समझ लीजिए कि मैं पहुँच गई हूँ और कुछ समय बाद आपको सहायता भी पहुँचने वाली है। और यदि तोप की आवाज न सुनाई दे तो समझ लेना कि मैं रास्ते में ही मार डाली गई हूँ। फिर आप जैसा उचित समझें वैसा करिए।''

इस प्रकार निश्चय कर वह वहाँ से चल दी। उसने कुछ तो अपना वेश बदला और कुछ अपनी चाल। रात के समय एक प्रकार से कुत्ते का रूप धारण कर और उसी प्रकार की चाल चलती हुई धीरे-धीरे दुर्ग का द्वार खोलकर वह बाहर निकली। द्वार खुलने का शब्द सुनकर 5-7 पठान दौड़कर उस ओर आए। किन्तु हरशरणकौर कुत्ते की-सी छलाँग लगाकर भागती-सी वहाँ से निकल गई। पठानों ने भी उसे वास्तव में कुत्ता ही समझा और वे अपने-अपने स्थान पर सतर्क खड़ हो गए। उन्होंने न उसका पीछा किया और न उस पर किसी प्रकार का प्रहार ही किया। दुर्ग से बाहर निकलकर पठानों की परिधि से भी बाहर निकल जाने का कठिनतम कार्य उसने बड़ी सरलता से कर दिखाया।

वह वीर रमणी किसी प्रकार साहस बटोरकर, मानो आगे के समुद्र को उसने तैरकर पार किया हो, इस प्रकार वह समय पर पेशावर जा ही पहुँची। जिस समय वह पहुँची वह लगभग रात्रि के ढाई बजे का समय था। सरदार हरिसिंह नलवा भयंकर ज्वर से कराह रहे थे। ज्यों ही उन्होंने पत्र पढ़ा उन्होंने अपनी 10 हजार सेना को जमरोद के लिए कूच करने की आज्ञा दे दी। एक तेज साँडनी सवार द्वारा महासिंह का पत्र अपनी टिप्पणी सहित उन्होंने लाहौर भिजवा

दिया, जिसमें शीघ्र ही सहायता भेजने की प्रार्थना की गई थी।

प्रातः तीन बजे के लगभग जमरोद के दुर्ग में बन्द सैनिकों ने पेशावर की ओर से तोप का शब्द सुना। बस फिर क्या था, दुर्ग के सैनिक द्विगुणित उत्साह से उछल पड़े। वे उचक-उचककर पेशावर की ओर देखने लगे।

सूर्योदय से पूर्व ही हरिसिंह नलवा अपनी सेना लेकर जमरोद पहुँच गए। अफगान सैनिक उठकर युद्ध की तैयारी कर ही रहे थे कि हिन्दू सेना ने उन पर गोले बरसाने आरम्भ कर दिए। जिस प्रकार बाज किसी पक्षी पर झपटता है ठीक उसी प्रकार नलवा अफगान सेना पर झपट पड़ा था।

नलवा के सम्मुख जो सेना आई उससे जमकर युद्ध हुआ। नलवा ने भयंकर आक्रमण किया। किन्तु पठान सेना भी अडिग रही। इस प्रकार नलवा ने उन पर दो बार आक्रमण किया किन्तु उनको डिगाने में असफल रहे। नलवा हताश नहीं हुआ। उसने पूरे बल से तीसरा आक्रमण किया और इस बार जिस पठान का मुख जिधर को था वह उधर को ही भाग निकला। दोस्त मोहम्मद के सभी वीर सेनानी घायल हो गए। नलवा के भी अनेक नायक घायल हुए थे किन्तु पठानों की दशा बहुत खराब थी। पठानों के लिए तो नलवा का नाम ही हौआ हो गया था। जब तक उनको पता था कि नलवा मैदान में नहीं है, तब तक तो वे उत्साह से लड़ते रहे, किन्तु ज्यों ही नलवे का आगमन सुना तो फिर उनके पैर उखड़ गए और उन्होंने भागने में ही अपनी कुशल समझी। इस युद्ध में भी पठान बहुत-से शास्त्रास्त्र छोड़कर भागे थे। उनकी 14 बड़ी तोपें भी वहीं रह गईं।

नलवा का महाप्रयाण

यद्यपि नलवा नहीं चाहते थे कि भागते हुए पठानों का पीछा

किया जाय, किन्तु सरदार निधानसिंह अत्यधिक उत्साह से भर गए और उन्होंने भागते पठानों का पीछा किया। इस प्रकार उन्हें मारते-काटते वे दूर खैबर दर्रे तक पहुँच गए। विवश नलवा को उसकी सहायता के लिए जाना पड़ा। इस प्रकार वे भी खैबर दर्रे तक चले गए। खैबर दर्रे में घनघोर वन था और उस वन में बड़ी-बड़ी गुफाएँ थीं। नलवा की सेना रात की यात्रा और प्रात: के घमासान युद्ध के कारण बहुत थकी हुई थी। स्वयं हरिसिंह नलवा ज्वर से तड़प रहे थे, फिर भी वे अपने नायक की सहायता के लिए खैबर दर्रे तक चले आए थे।

पठान दर्रे से भी भागकर जा रहे थे कि शमशदीन खाँ दो हजार की नई सेना लेकर उनकी सहायता के लिए वहाँ आ पहुँचा। आते ही उसने निधानसिंह के साथ लड़ना आरम्भ कर दिया। सरदार हरिसिंह नलवा उस समय एक गुफा के निकट खड़े युद्ध का रंग देख रहे थे। तभी सहसा गुफा के अन्दर छिपे पठानों ने उन पर पीछे से गोली चला दी। वह गोली नलवा को न लगकर उनके अंगरक्षक अजायबसिंह को लगी। वह वहीं ढेर हो गया। यह देखकर सरदार हरिसिंह गुफा की ओर बढ़े। अवसर देखकर उन छिपे हुए पठानों ने उन पर पीछे से गोलियों की बौछार करनी आरम्भ कर दी। उनमें से एक गोली उनके पैर पर और एक उनके पेट में लगी। यद्यपि नलवा के सैनिकों ने उस गुफा को घेरकर उसमें छिपे पठानों के टुकड़े-टुकड़े कर डाले किन्तु उससे पहले ही नलवा पर प्रहार किया जा चुका था।

उन दो गोलियों का प्रहार नलवा के लिए असह्य हो गया। तो भी नलवा ने अपना घोड़ा दौड़ाया और वे बात-बात में जमरोद दुर्ग पर जा पहुँचे। जब उनको दो व्यक्तियों की सहायता से घोड़े पर से उतारा गया तो उनके घावों पर से रक्त के फव्वारे छूट रहे थे। यह देखकर तो सभी के हृदय काँप उठे। तदपि उनके आहत होने का

समाचार गुप्त रखा गया। किसी बाहरी व्यक्ति को इसका ज्ञान नहीं हुआ।

तब तक सरदार निधानसिंह की सहायता के लिए सरदार अमरसिंह जा पहुँचा था। इस प्रकार पठानों की वहाँ पर भी मात खानी पड़ी और बहुत-सी युद्ध सामग्री वहीं छोड़कर वे भाग खड़े हुए। सेना जमरोद दुर्ग वापस आ गई। पठानों की सारी आशाओं पर वज्रपात हो गया था। वे इतने भयभीत हुए कि उसके बाद फिर कभी उन्होंने जमरोद अथवा पेशावर की ओर मुख किया ही नहीं। शमशदीन खाँ की सामयिक सहायता भी निष्फल सिद्ध हुई।

सरदार हरिसिंह नलवा की दशा क्षण-क्षण बिगड़ती जा रही थी। अत्यधिक रक्तस्राव होने से दुबर्लता बहुत बढ़ गई थी। घावों में असह्य पीड़ा हो रही थी। यद्यपि हरिसिंह नलवा में बोलने की किंचित् भी सामर्थ्य नहीं थी। फिर भी उन्होंने सबको एकत्रित कर उन्हें सम्बोधित करते हुए कहा, ''मेरे प्रियजनो, मुझे लग रहा है कि यह शरीर अब अधिक टिकनेवाला नहीं है। आप लोगों ने जिस वीरता का परिचय इस युद्ध में दिया है उसके लिए मैं आपको बधाई देता हूँ। हम लोगों ने बड़े प्रयत्न से आठ सौ वर्ष बाद फिर इस भूमि को पठानों से छीनकर इस पर हिन्दू राज्य स्थापित किया है जो जयपाल के समय में भारत से छिन गया था। इस क्षेत्र की प्राण-पण से रक्षा करना आप लोगों का परम-कर्तव्य है।''

इससे अधिक बोलना उनके लिए शक्य नहीं हो पा रहा था। उन्हें असह्य वेदना हो रही थी। धीरे-धीरे वे अचेत होते गये और फिर कुछ काल के उपरान्त उनकी आत्मा उस नश्वर देह का परित्याग कर अपने धाम को चल दी।

यह दुःखद् समाचार एक तेज साँडनी सवार द्वारा लाहौर दरबार भेज दिया गया। तीसरे दिन वह सवार लाहौर जा पहुँचा। महाराजा

रणजीतसिंह को जब यह समाचार मिला तो इससे उनको हृदय-विदारक आघात लगा। कुछ क्षण तक तो उनके मुख से एक शब्द भी नहीं निकल सका। फिर अन्त में बोले, ''हिन्दू राज्य का आज एक बहुत बड़ा स्तम्भ गिर गया है।''

इस प्रकार सन् 1837 में केवल 47 वर्ष की ही अल्प आयु में शौर्य का यह सूर्य, जाति-प्रेम का प्रतीक, विनम्रता की मूर्ति, अबलाओं का रक्षक तथा दीनों का दाता इस धरती पर से सहसा विलुप्त हो गया। यह महाराजा रणजीतसिंह की ही क्षति नहीं हुई अपितु भारत देश की क्षति थी। भारत की भावी पीढ़ी ने इस क्षति को अनुभव किया और आज भी वह इस क्षति को नहीं भूल पा रही है।

◆◆◆